तुलसीदास

I

जीवन परिचय :- (भक्तिकाल में सगुण भक्तिधारा की दो शाखाएँ थी - 1. रामभक्ति शाखा, 2. कृष्णभक्ति शाखा। रामभक्ति शाखा के प्रवर्तक गोस्वामी तुलसीदास थे। इनके जीवन वृत्त के बारे में विद्वानों ने अन्तः साक्ष्य और बहिः साक्ष्य के आधार पर अनेक मत प्रस्तुत किए हैं। इनके जन्म-स्थान और जन्म-तिथि को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। निष्कर्षतः बाँदा जिले में कालिंदी किनारे पर स्थित राजापुर को इनका जन्म-स्थान माना गया है। डॉ. बहादुर सिंह अपने इतिहास-ग्रन्थ 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में विद्वानों के निष्कर्ष के आधार पर मानते हैं कि इनका जन्म संवत् 1589 (1532 ई.) तथा मृत्यु संवत् 1680 (1623 ई.) में हुई। (इनके बचपन का नाम 'रामबोला' था। बाद में ये 'तुलसी' के नाम से पहचाने जाने लगे। ये जाति के सरयूपारीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का नाम हुलसी था।)

(एक जनश्रुति यह थी कि इनका जन्म अभुक्त मूल (मूलनक्षत्र) में हुआ। इसीलिए इनके माता-पिता ने इनका त्याग कर दिया। इनके त्यागने के पश्चात् बाबा नरहरिदास ने इनका पालन-पोषण करने के साथ-साथ इन्हें ज्ञान एवं भक्ति की शिक्षा-दीक्षा दी। इसका संकेत स्वयं इन्होंने अपने ग्रन्थ 'कवितावली' में दिया है।)

मातु पिता जग जाइ तज्यो बिधिहू न लिख्यो कछु भाल भलाई।

(इनके गुरु का नाम बाबा नरहरिदास था। काशी में पंचगंगा घाट पर रहने वाले श्रेष्ठ विद्वान शेष सनातन से इन्होंने वेद, वेदान्त, दर्शन, इतिहास और पुराण की शिक्षा प्राप्त की।) 15 वर्षों के अध्ययन के पश्चात् ये अपनी

Scanned with CamScanner

जन्मभूमि राजापुर लौटे। (ये स्मार्त वैष्णव थे। इनका विवाह दीनबन्धु पाठक की पुत्री रत्नावली से हुआ। ये अपनी पत्नी के प्रति अत्यधिक आसक्त थे। एक बार अपनी पत्नी के पीहर जाने पर पीछे पीछे अपने ससुराल पहुँच गए। तब इनकी पत्नी ने इन्हें फटकार लगाते हुए कहा कि जितनी आसक्ति मेरे प्रति है, यदि उतनी ही आसक्ति तुम अपने आराध्य राम के प्रति रखते तो तुम्हारा जीवन धन्य हो जाता है। उस दिन से ये गृहस्थ जीवन जीते हुए वैरागी बन गए।)

(इनकी भक्ति दास्य भाव की थी। इनकी भक्ति-पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है - उसकी सर्वांगपूर्णता। इसमें जीवन के सभी पक्षों का सामंजस्य है। ये अपने समय के सर्वश्रेष्ठ समन्वयवादी कवि थे। इसीलिए इन्हें 'लोक नायक' कहा गया है। साथ ही ये अपने समय के सबसे बड़े महात्मा और भक्त थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने इतिहास-ग्रंथ 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में कहते हैं - "भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि यदि किसी को कह सकते हैं, तो इन्हीं महानुभाव को।")

इनके कुछ ग्रन्थों को लेकर जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं।

रचनाएँ :- इनके प्रामाणिक ग्रन्थों की संख्या 12 है, जो निम्नलिखित हैं :-

प्रबन्ध काव्य :- 1. रामचरितमानस (इसे लिखने में 2 वर्ष 7 माह लगे। इसमें राम की कथा है) 2. रामलला नहछू 3. पार्वती मंगल, जानकी मंगल

गीति काव्य :- 1. विनयपत्रिका (इसमें इन्होंने अपने प्रार्थना पत्र को किसी माध्यम से राम के पास पहुँचाकर

ठेठ अवधी

(इसी [illegible]), गीतावली, कृष्ण गीतावली।

मुक्तक काव्य :- 1. कवितावली, वैराग्य संदीपनी, बरवै रामायण, 4. रामाज्ञा प्रश्न 5. दोहावली

दोहावली, वैराग्य संदीपनी इन रचनाओं में [illegible] कवितावली, गीतावली और [illegible] ब्रजभाषा में हैं और शेष रचनाएँ ~~अवधि~~ अवधी भाषा में हैं।)

V. Imp 2014

प्र. 1 तुलसीदास की भक्ति-भावना का विवेचन कीजिए।

'भज्' धातु 'क्तिन्' प्रत्यय लगने से 'भक्ति' शब्द बना है। इसका अर्थ है - अपने आराध्य अथवा इष्टदेव की सेवा करना। श्रद्धा के साथ ईश्वर का स्मरण करना ही भक्ति है। तुलसीदास राम के अनन्य भक्त थे। इन्होंने अपने ग्रन्थों - रामचरितमानस, कवितावली, गीतावली, बरवै रामायण और विशेषकर 'विनय पत्रिका' में राम के प्रति अनन्य भक्ति दिखाई है। इनकी भक्ति भावना दास्य भाव की थी। इन्होंने अपने इष्टदेव राम के समक्ष स्वयं को अत्यधिक छोटा बताया है :-

राम से बड़ो है कौन, मोसो कौन छोटो।
राम से खरो है कौन, मोसो कौन खोटो॥

इनकी भक्ति भावना की विशेषताएं :-

1. आस्था तथा विश्वास :- इन्होंने अपने इष्ट राम के अलावा किसी भी अन्य ईश्वर के प्रति आस्था एवं विश्वास को प्रकट नहीं किया है। इनकी आस्था और विश्वास उस राम में है जिसने प्रह्लाद [illegible] आदि भक्तों की रक्षा की, विभीषण और सुग्रीव जैसे मित्रों को सर्वस्व दिया, ऋषि और मुनि जिन्हें कठोर तपस्या करके भी मुश्किल से प्राप्त करते हैं, जो दीनों के रक्षक एवं पालक हैं, जो शरणागतों की रक्षा करने वाले हैं। वे कहते हैं -

एक ही भरोसो राम। सबसे कहावत हौं। (6)

2\. आत्मनिवेदन : तुलसीदास ने राम के समक्ष आत्मनिवेदन पूर्ण प्रार्थना के साथ किया है। इन्होंने स्थान स्थान पर स्वयं के छल और दम्भ को अपनाने के लिए इसका प्रयोग किया है। इसकी छवि उनके सम्पूर्ण काव्य में दिखाई देती है। इन्होंने स्वयं को हीन, तुच्छ तथा लघु बताया है। इन्होंने कहा है कि मेरे जन्म के समय न तो मंगलगान हुआ और न ही मेरा जन्म किसी सम्पन्न परिवार में हुआ है। साथ ही मूल नक्षत्र होने के कारण मैं अपने माता पिता के लिए दुःख का कारण बना। वे मानते हैं कि राम दुःखों को दूर करने वाले हैं, इसीलिए उन्हें किसी बात की चिन्ता नहीं है। वे कहते हैं कि-

आरत - आरती भंजन राम, गरीबनेवाज न दूसरो ऐसो।

वे मानते हैं कि राम दयालु निधान हैं -

दीन - दुख - दारिद - दलैया दीनबंधु राम।
तुलसी न दूसरो दयानिधानु दुनी में ॥

3\. मनोभूमियों का चित्रण :- इन्होंने अपने हृदय के भक्तिपूर्ण भावों को विविध प्रकार से प्रकट करके अपने हृदय की कलुषिता को स्वच्छ कर लिया है। इन्होंने सात प्रकार के भावों को प्रकट करके अपनी काव्य की विलक्षणता को प्रकट किया है - 1. दीनता, 2. भय, 3. आश्वासन, 4. भर्त्सना, 5. अभिमान - मर्दन, 6. मन की उच्च अभिलाषाएँ और 7. दार्शनिक विचार।

इन्होंने मनुष्य को भय दिखाकर संतों की सभा में बैठने के लिए कहा है। इनके हृदय में राम की कृपा का आश्वासन व्याप्त है। इनका मानना था कि मनुष्य को अपने हृदय में विद्यमान अभिमान को नष्ट करना चाहिए। मन में विद्यमान उच्च अभिलाषाओं को पूर्ण करने के लिए इन्होंने विभिन्न स्थानों पर राम से प्रार्थना की है। इनका मानना था कि मनुष्य को लौकीन जानकर

सदा उदार सब पर उपकारी।
सिय जीवन सेवक नर-नारी॥ (3)

व्यक्ति को राम की भक्ति के लिए तैयार रहना चाहिए।

4\. शरणागति का चित्रण : इन्होंने अपने अनु जनता के भाई विभीषण को जीने की लंका प्रदान की। सुग्रीव को किष्किंधा नगरी का शासन सौंपा। शबरी के जूठे बेर को खाकर उसे मुक्ति प्रदान की। जटायु को मोक्ष प्रदान किया। अहिल्या तथा अजामिल का उद्धार किया। गज की रक्षा की। इस कारण वे शरणागत राम के गुणों को हमेशा गाते रहते थे। वे कहते हैं - सौकरे के, सेइबे सराहिबे सुमिरिबे को,

राम - सो न साहिब, न कुमति - कटइबे को।

5\. दार्शनिक भावों का चित्रण :- इनके काव्य में दर्शन की सात विशेषताएँ प्राप्त होती हैं - गहरी अध्यात्म भावना, मोक्ष के लिए परम पुरुषार्थ, चैतन्य भाव, सत्यनिष्ठा, धर्म के सार्वभौमिक स्वरूप, परमात्मा के प्रति आस्था और समन्वय की दृष्टि। इनके काव्य में दार्शनिक भावना की धारा लगातार बहती रही है। यह संसार को नश्वर मानते मानते दार्शनिक बन गए हैं। इसके अलावा ये मानते हैं कि कलियुग ने कोहराम मचाकर सभी धर्मों को अपने प्रभाव से मुक्त कर लिया है। लोग इसके भय से ग्रस्त हैं और वे इससे दूर रहना चाहते हैं।

धर्म सबै कलिकाल ग्रसे, जप, जोग, विराग लै जीव पराने।

इस कलियुग पर एक राजा परीक्षित ने अत्यधिक उपकार किया, परन्तु इसने उस उपकार को भुलाकर कृतघ्नता का परिचय दिया :-

छाड़े छितिपाल जो परीक्षित भये कृपाल,
भलो कियो खल को, निकाई सो नसाई है।

इनका मानना है कि कलियुग के प्रभाव के कारण लोग बेरोजगार होकर भटक रहे हैं। किसानों की खेती व्याकुल हो गई है। भिक्षुकों को भिक्षा नहीं मिल रही है। लोगों का व्यापार मंदा पड़ गया है। लोग इससे बचने में असफल हो रहे हैं। तुलसीदास का मानना है कि गंगा में स्नान करने वाले व्यक्ति

स्वयं का उद्धार कर लेता है।

6. विनय भावना : इनकी दास्य भाव की भक्ति में दीनता और विरह की प्रधानता है। इन्होंने विनय की भूमिकाओं- दैन्य, अहंकार का त्याग, भय के दर्शन, स्वयं की निन्दा, आश्वासन, मनोराज्य, विचारणा और आसक्ति का चित्रण किया है। वनवासियों की दीनता की भावना तथा राम के प्रति इनकी स्नेह की भावना अयोध्याकाण्ड में प्रकट हुई है।

7. सत्संगति पर बल :- इन्होंने भक्ति की सफलता का आधार सत्संगति को माना है, क्योंकि संत हमेशा भगवान पर आश्रित रहते हैं। संतो के सम्पर्क में आकर मनुष्य ईश्वर की भक्ति की ओर बढ़ता है। इन्होंने सत्संगति के साथ-साथ ज्ञान और वैराग्य को भी भक्ति में स्थान दिया है।

8. सात्विक भावों की प्रधानता :- इन्होंने अपनी भक्ति में सात्विक भावों को स्थान दिया है। इन्होंने सेव्य-सेवक भाव से ईश्वर की पूजा करना अपना कर्तव्य माना है। भरत राम के अनन्य भक्त थे। ननिहाल से लौटते हुए जब उन्हें अपनी माता के वरदान से राम के वनवास-गमन का पता चलता है, तो वे अपनी माता की भर्त्सना करते हैं। आत्मग्लानि में डूबकर वे स्वयं को धिक्कारते हैं। वे मानते हैं कि संसार में उनके समान कोई दूसरा पापी नहीं है। इस प्रकार तुलसीदास ने भरत के हृदय की सात्विकता को प्रकट किया है। इसीलिए इनकी भक्ति-भावना श्रद्धा और विश्वास से युक्त दिखाई देती है।

9. अहंकार का त्याग और दीनता का भाव :- तुलसीदास मानते हैं कि भक्त को अपने हृदय में विद्यमान अहंकार का त्याग करके दीनता का भाव रखते हुए अपने इष्टदेव के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास के साथ एकनिष्ठ होकर भक्ति करनी चाहिए। तभी ईश्वर का सान्निध्य संभव है। अहंकारी व्यक्ति ईश्वर की भक्ति नहीं कर सकता।

10. वैराग्य की भावना :- तुलसीदास मानते हैं कि काम, क्रोध, मद और लोभ इत्यादि बुरे भावों का त्याग करना ही वैराग्य है। ये मानते हैं कि, वैराग्य प्राप्त करने की प्रथम अवस्था में केवल राम की कथा का गुणगान करना चाहिए। मनसा-वाचा-कर्मणा से परोपकार में लगे हुए रहना चाहिए।

11. अनन्य भाव :- ये मानते थे कि अपने आराध्य के चरणों में स्वार्थ को त्यागकर पूर्णरूप से स्वयं को समर्पित करने पर भक्त भक्ति को प्राप्त कर सकता है। ये मानते थे कि जैसे चातक, चकोर, मछली स्वाति नक्षत्र में बादल, चन्द्रमा तथा जल के साथ अनन्य प्रेम रखते हैं, वैसे ही मैं भी अपने आराध्य राम के प्रति अनन्य प्रेम रखता हूँ -

एक भरोसो, एक बल, एक आस विस्वास।
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास॥

12. नवधा भक्ति :- इनकी भक्ति में श्रवण, कीर्तन, वन्दन, दासता, स्मरण, आत्म-निवेदन, अर्चना, पद-वन्दना और सखाभाव आते हैं। अतः वैसे तो इनमें नौ (9) प्रकार की भक्ति पाई जाती है, परन्तु मूलतः इनकी भक्ति दास्य भाव की है। ये राम को स्वामी तथा स्वयं को उनका सेवक मानते हैं। ये भक्तिकाल के सगुण भक्ति धारा के समर्थक हैं। इनके साहित्य में राम के प्रति अत्यधिक भक्ति-भावना प्रकट हुई है। ये मानते हैं कि राम पतितों का उद्धार करने वाले हैं और लोक कल्याणकारी ज्ञान देने में

शिरोमणि हैं। ये भक्तों के भगवान हैं। तुलसी की भक्ति राम को आदेश मानकर चल रही है। इन्होंने अपने राम के प्रति अनन्यता को सर्वश्रेष्ठ प्रकट किया है। इनकी भक्ति में मुख्यतः चार विशेषताएँ दिखाई देती हैं-

1. सगुणोपासना, 2. राम के शील तथा सौंदर्य का चित्रण,
3. अनन्य भाव, 4. नाम-स्मरण।

इन्होंने सगुण राम को अपनाकर उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम माना है। सगुण राम को मानने पर भी इन्होंने अपने काव्य में कहीं पर भी निर्गुण ईश्वर का खण्डन नहीं किया है। इन्होंने ईश्वर के विराट रूप की विवेचना की है। इनके अनुसार शबरी, केवट, जटायु, प्रह्लाद तथा अजामिल को मुक्ति देने वाले सगुण राम हैं। इनके हृदय में राम के प्रति गर्व का भाव है-

जानत जहान मन मेरे हूँ गुमान बड़ो,
मान्यो मैं न दूसरो, न मानत न मानिहौं।

तुलसी मर्यादा पुरुषोत्तम राम के गुलाम हैं-

तुलसी सरनाम गुलाम है राम को,
जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।

इनका मानना है कि वे राम के भरोसे ही सुख की निद्रा को ग्रहण कर रहे हैं। ये मानते हैं कि राम का शील अत्यधिक उच्च है। इन्होंने अपने शील की रक्षा के लिए अयोध्या लौटने पर अपनी पत्नी सीता तक का त्याग कर दिया। इनका अवतार दुष्टों के विनाश तथा साधुओं की रक्षा के लिए हुआ है। इनकी उदारता एवं करुणा व्यापक है। तुलसी मानते हैं कि 'राम' के नाम में सर्वस्व है। साथ ही इनका मानना है कि ज्ञान और भक्ति में कोई भेद नहीं है और ये दोनों ही संसार के कष्टों को दूर करने वाले हैं। इन्होंने कहा है - 'ज्ञानहि भगतहि नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव संभव खेदा।'

इन्होंने निष्कर्षतः ज्ञान और भक्ति का श्रेष्ठ चित्रण 'रामचरितमानस' में किया है। ये मानते हैं कि ईश्वर को भक्ति मार्ग और ज्ञानमार्ग दोनों से प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु भक्ति मार्ग अपनी सरलता और सुगमता के कारण अत्यधिक लोकप्रिय है। अतः इन्होंने इसी भक्ति मार्ग का प्रतिपादन अपनी भक्ति-पद्धति में किया है। इस भक्ति में एक ओर शास्त्रोचित विधियों का पूर्ण समावेश है तो दूसरी ओर यह अपनी सरलता के कारण जनसाधारण में भी लोकप्रिय हुई है।

प्रश्न:2 तुलसीदास की समन्वय भावना का विश्लेषण कीजिए। अथवा तुलसीदास का लोकनायक के रूप में विश्लेषण कीजिए।

उत्तर: ये अपने समय के सर्वश्रेष्ठ समन्वयवादी कवि थे इसीलिए इन्हें 'लोकनायक' कहा गया है। इनका प्रादुर्भाव मुगलों के समय में हुआ। उस समय धर्म, समाज, राजनीति और संस्कृति आदि सभी क्षेत्रों में असमानता और वैमनस्य फैला हुआ था। इससे पूर्व सन्त कवियों ने सम्पूर्ण भारत में भावात्मक एकता स्थापित करने का प्रयास किया किन्तु तुलसी ने इस असमानता को दूर करने के लिए समन्वय का अनूठा प्रयास किया।

समन्वय का अभिप्राय है - विरोध दूर करके और पारस्परिक भेदभाव को समाप्त करके समरसता उत्पन्न करना। इन्होंने समाज, धर्म, भक्ति और आचार-व्यवहार के क्षेत्र में भी समन्वय का विशेष प्रयास किया। इस क्षेत्र में भी असमानताओं को दूर करके काव्य के अन्य विविध क्षेत्रों में भी समन्वय का विशेष प्रयास किया। इस क्षेत्र में इनके योगदान की प्रशंसा करते हुए आचार्य

हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं-

"लोकनायक वही हो सकता है, जो समन्वय कर सके। तुलसी का सम्पूर्ण काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है।"

तुलसी का विविध क्षेत्रों में समन्वय :-

(1) नर और नारायण का समन्वय :- तुलसी ने राम को दशरथ के पुत्र के रूप में स्वीकार करते हुए परमात्मा के रूप में स्वीकार किया है। ये मानते हैं कि धर्म की स्थापना करने के लिए और असुरों के विनाश के लिए भगवान् विष्णु राम के रूप में प्रकट हुए हैं -

भए प्रकट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।

इनका मानना है कि राम भले ही 'नरलीला' कर रहे हो किन्तु अन्ततः वे अखण्ड, अनन्त, अरूप और, अचल ईश्वर हैं। ये सज्जनों के दुख-दूर करने वाले हैं और ये मन, वाणी और बुद्धि से अनिर्वचनीय हैं।

(2) सांस्कृतिक समन्वय :- इन्होंने इस क्षेत्र में (1) प्रवृत्ति एवं निवृत्ति, (2) भौत एवं मंगल, (3) लोक एवं वेद में समन्वय किया है।

(i) इनका मानना था कि पूर्णतः घर की साधना करना हानिप्रद है और पूर्णतः वन की साधना करना पलायन है। दोनों में तालमेल बैठाकर कर्म करते हुए जीवन में इच्छित सुख, समृद्धि और शांति को प्राप्त किया जा सकता है -

"घर राखे घर जात है, पर छोड़े घर जाये।
तुलसी घर वन बीच ही रहो प्रेमपुर छाय॥"

भौत का अर्थ - व्यक्तिगत कल्याण और मंगल का अर्थ - सामाजिक कल्याण है। दोनों में से किसी एक आधार पर वास्तविक आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती है। इसीलिए दोनों में समन्वय का होना अत्यधिक आवश्यक है।

(iii) लोक एवं वेद में समन्वय से तात्पर्य सभ्यता और संस्कृति के समन्वय से है। लोक वर्तमान और वेद अतीत के बोधक हैं। दोनों को एक दूसरे की अपेक्षा है। तुलसी ने अपने साहित्य में इन दोनों को जुड़वा शब्द के रूप में प्रयुक्त किया है।

(3) धार्मिक समन्वय :- धर्म के दो पक्ष होते हैं - विश्वास और आचरण। कहीं पहला पक्ष प्रधान होता है तो कहीं दूसरा पक्ष। इन्होंने इस क्षेत्र में -

(i) धार्मिक आस्तिकता के केंद्र बिंदु
(ii) धार्मिक उपास्य देवों
(iii) धार्मिक आस्था के मूल स्त्रोतों
(iv) धार्मिक साधना के विविध मार्गों में समन्वय किया।

(क) भारत में धार्मिक आस्था के दो केंद्र बिन्दु थे - निर्गुण ब्रह्म, सगुण ब्रह्म। इनके राम साकार और निराकार दोनों ही थे। साधु-सन्तों के कष्टों का निवारण करने के लिए और धर्म की स्थापना करने के लिए जहाँ एक ओर वे सगुण रूप धारण करते हैं तो दूसरी ओर वे अनन्त, अव्यक्त, अविकारी, अचल और अनिकेत हैं। जैसे:- जल, बर्फ और ओले बाहर से अलग दिखकर भी मूलतः एक ही तत्व जल के विविध रूप हैं। ठीक उसी प्रकार ईश्वर कभी निर्गुण तो कभी सगुण रूप में दिखाई देता है। इन्होंने कुछ स्थानों पर ब्रह्म की सगुण रूप में स्थापना की है तो दूसरी तरफ इन्होंने उसे निर्गुण रूप में सर्वव्यापक सिद्ध किया है -

सगुन अगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावत मुनि पुरान बुध बेदा।

(7)

ii) इन्होंने व्यापक और संतुलित अवधारणा के अंतर्गत सभी मतों और संप्रदायों को एक दूसरे के पास लाने का मार्ग प्रशस्त किया। इन्होंने रामावत और शैव मार्गों में समन्वय स्थापित किया। शैव, शाक्त और वैष्णव मतों में चल रहे संघर्ष को समाप्त करने का प्रयास किया। तुलसी ने राम के मुख से यह कहलाया - "शिव द्रोही मम दास कहावा, सो नर मोहि सपनेहु नहिं भावा।" इन्होंने राम को शिव का अनन्य भक्त सिद्ध करने का एक विलक्षण कार्य किया। ये राम और शिव में भेद न मानते हुए कहते हैं -
हरिहर पद रति मति न कुतरकी।

iii) इन्होंने धार्मिक आस्था के मूल स्त्रोतों - निगम और आगम में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया।

iv) इन्होंने धार्मिक साधना के तीनों मार्गों - ज्ञान, कर्म और उपासना में समन्वय स्थापित किया। इन्होंने उसी भक्ति को श्रेय और प्रेय से युक्त माना जिसमें ज्ञान और कर्म दोनों का प्रभाव आकर मिलता हो।

आध्यात्मिक समन्वय :- इन्होंने इस क्षेत्र में - 1. विभिन्न आध्यात्मिक एवं दार्शनिक चिन्तन धाराओं 2. मनुष्य की केंद्रीय स्थिति और जीवन की सार्थकता में समन्वय किया।

इनके समय में विभिन्न वादों में आपसी संघर्ष चल रहे थे। सभी एक दूसरे का खण्डन और विरोध कर रहे थे। तुलसी ने कहा कि इस संसार में कुछ लोग संसार को मिथ्या कहते हैं, तो कुछ लोग ब्रह्म को सत्य कहते हैं। कुछ लोग दोनों को प्रबल मानते हैं। तुलसी मानते हैं कि हमें तीनों ही मत-मतान्तरों को छोड़कर स्वयं की पहचान करनी चाहिए।

तुलसी ने मनुष्य की केंद्रीय ~~स्थिति~~ स्थिति और जीवन की सार्थकता से संबंधित एक सुंदर एवं संतुलित दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए इनमें समन्वय स्थापित किया।

5. राजनीतिक समन्वय :- तुलसी का प्रादुर्भाव मुगलों के समय हुआ। उस समय राजा अपने कर्तव्य का पालन नहीं कर रहे थे और प्रजा अनैतिक रूप भोग रही थी। तब इन्होंने "राम-राज्य" की कल्पना की। इसके अन्तर्गत एक आदर्श शासन-व्यवस्था को प्रस्तुत किया। इन्होंने इस क्षेत्र में -
1. राजा संबंधी धारणा 2. राजा और प्रजा संबंधी कर्तव्य - में समन्वय स्थापित किया।

1. तुलसी ने राजा को प्रजा का सच्चा प्रतिनिधि माना। इन्होंने राजा की सर्वोपरि सत्ता को स्वीकार करते हुए उसकी निरंकुशता को अस्वीकार किया। इन्होंने उसके पद को प्रजा की सेवा का साधन माना। इन्होंने राजा को 'सूर्य' की उपमा देकर की।
"बरसत हरषत लोग सब, करषत लखै न कोइ।
तुलसी प्रजा सुभाग ते, भूप भानु सो होइ।"
जब राजा अपने हितों को साधने लगता है तो पतन की तरफ बढ़ने लगता है।

2. प्रजा को भी अपने अधिकारों का समुचित उपयोग करते हुए अपने कर्तव्यों का उचित पालन करना चाहिए ताकि राजा को उसके साथ कठोरता का व्यवहार न करना पड़े। इसीलिए तुलसी ने "रामचरितमानस" महाकाव्य में 'राम-राज्य' की कल्पना की।

6. ज्ञान और भक्ति का समन्वय :- इनके समय एक ओर तो ज्ञानमार्गी भक्ति प्रबल थी, तो दूसरी तरफ प्रेममार्गी भक्ति। एक तरफ कृष्णभक्त थे, तो दूसरी तरफ रामभक्त। इन्होंने ज्ञानमार्ग को बताया, परन्तु उसे अगम और तलवार की धार के समान कठिन भी बताया -
ज्ञान पंथ कृपाण कै धारा।
इन्होंने भक्ति को सम्पूर्ण सुखों की खान, सरल, सहज और सुगम

बताया तो ज्ञान को दूत। तुलसी ने अपनी भक्ति के लिए ज्ञान और वैराग्य को आवश्यक बताया। ये सगुणमार्गी थे फिर भी इन्होंने ज्ञानमार्गियों का समर्थन किया। ये जीवन का मूल उद्देश्य मुक्ति को मानते हैं। इन्होंने "रामचरितमानस" महाकाव्य के 'उत्तरकाण्ड' में ज्ञान को 'दीपक' तथा भक्ति को 'मणि' माना है। इन्होंने ज्ञान और भक्ति में समन्वय करते हुए कहा है:-

ज्ञानहि भगतिहि नहिं कछु भेदा। ✓✓ (3)
उभय हरहि भव संभव खेदा।

7. दार्शनिक समन्वय: इनके समय अनेक दार्शनिक विचारों का प्रभाव था। इनके समय में अद्वैतवाद, द्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, विशुद्धाद्वैतवाद तथा विशिष्टाद्वैतवाद में आपसी संघर्ष चल रहे थे। सभी एक-दूसरे का खण्डन और विरोध कर रहे थे। इन्होंने सभी मतों को नजदीक से देखा। साथ ही कहा कि संसार मिथ्या है, परन्तु माया के प्रभाव से यह सत्य प्रतीत होता है। इसीलिए निष्कर्षतः इन्होंने सभी मत-मतान्तरों को अप्रधान बताते हुए अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद में समन्वय स्थापित करते हुए विशिष्टाद्वैतवाद की स्थापना की। ये इसी वाद के अनुयायी थे। ये जीव को ईश्वर का अंश मानकर उसे ईश्वर के समान चेतन, पवित्र और अविनाशी मानते हैं-

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन, अमल, सहज सुखरासी॥

इन्होंने संसार को शून्य में निर्मित चित्र मानकर भी 'विशिष्टाद्वैतवाद' विचारधारा का समर्थन किया।

8. सामाजिक समन्वय:- इन्होंने इस क्षेत्र में - 1. व्यक्ति की इच्छाएं एवं सामाजिक दायित्व, 2. पारिवारिक संबंधों, 3. वर्गगत कर्तव्य-भावना, 4. नारी विषयक मान्यताओं - में समन्वय किया।

1. इनका मानना था कि व्यक्ति की इच्छा और समाज के दायित्व एक दूसरे के पूरक हैं। राम, भरत, लक्ष्मण, सीता और कौशल्या के चरित्र इसके प्रमाण हैं। निर्वासन के बाद जब भरत पर विशेष संकट आया तो कौशल्या राम से अधिक भरत के लिए चिंतित रही। इन्होंने वशिष्ठ की निषादराज और राम की केवट, शबरी, वानर, भालू और रीछ से भेंट कराकर सामाजिक भेदभाव को मिटाने का प्रयास किये।
2. इन्होंने पिता-पुत्र, भाई-भाई, सास-बहू और स्वामी-सेवक में सुन्दर समन्वय स्थापित किया। राम के रूप में इन्होंने एक आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श पति और आदर्श मित्र का स्वरूप प्रस्तुत किया। भरत, भ्रातृत्व की भावना के आदर्श हैं और लक्ष्मण अग्रज के प्रति सेवा की भावना के। हनुमान सेवक धर्म के आदर्श हैं, विभीषण सच्चे भक्त के आदर्श हैं और सुग्रीव मैत्री धर्म के आदर्श हैं। चित्रकूट सभा में यह निर्णय किया गया कि अयोध्या के राजा तो राम ही होंगे किन्तु वनवास की अवधि में भरत राजा के प्रतिनिधि बनकर अयोध्या की देखभाल करेंगे। पिता के वचन का पालन करते हुए चौदह वर्षों तक वनवास में रहकर राम ने आदर्श पुत्र होने का जो उदाहरण प्रस्तुत किया, वैसा विश्व में अन्यत्र कहीं दिखाई नहीं देता है।

3,4 ये वर्ण-व्यवस्था की वकालत करते थे और नारी को बराबरी के दर्जे से वंचित रखने की बात कहते थे। इन्होंने अपने समय में देखा कि कवि नारी को घृणा की दृष्टि से देख रहे हैं तो इन्होंने वर्ण-व्यवस्था और नारी-विषयक व्यवस्था - दोनों में समन्वय कराने का प्रयास किया।

9. साहित्यिक समन्वय:

(1) इन्होंने ब्रज एवं साहित्यिक अवधी (पश्चिमी) - दोनों भाषाओं

को अपनाया। इन्होंने बारह (12) प्रामाणिक रचनाएं लिखी जिनमें से चार रचनाएं :- विनयपत्रिका, गीतावली, कृष्ण गीतावली और कवितावली। तो ब्रज भाषा में और इनके आठ (8) रचनाएं रामचरितमानस, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, वैराग्य संदीपनी, बरवै रामायण, रामाज्ञा प्रश्न, रामलला नहछू, दोहावली अवधी भाषा में लिखी।

2 इन्होंने वीरगाथाकाल की छप्पय पद्धति, सूरदास और विद्यापति की गीत-पद्धति, भाटों की कवित्त-पद्धति, दोहा चौपाई पद्धति और सूक्ति-पद्धति को अपनाया। उस समय हिन्दी जनता में जितने प्रकार की काव्य-पद्धतियों का प्रचलन था, इन्होंने उन सबको सफलता के साथ अपनाया।

3 इन्होंने अपने समय में प्रचलित सभी काव्य-शैलियों का प्रयोग किया। इन्होंने अपनी रचनाओं में इन सभी शैलियों को अपनाया।

4 इन्होंने भाषा और संस्कृत में समन्वय स्थापित किया। 'रामचरितमानस' और 'विनयपत्रिका' की स्तुतियों में संस्कृत का प्रयोग करके भाषा और संस्कृत में समन्वय स्थापित किया।

इन्होंने मंगल काव्य लिखे और विभिन्न रागों में भी काव्य लिखे। इन्होंने श्रव्य और दृश्य, भाव और भाषा, भक्ति और कविता और छन्द एवं अलंकार इत्यादि में कलात्मक सामंजस्य स्थापित किया।

निष्कर्षत: तुलसी अपने समय के महान समन्वयवादी थे। इन्होंने जीवन और संसार के प्रत्येक क्षेत्र में समन्वय स्थापित करते हुए सब लोगों को साथ लेकर चलने का प्रशंसनीय कार्य किया। इन्होंने साहित्य के क्षेत्र में पूर्व की परम्पराओं - खण्डन, मण्डन और अक्खड़ता को नकारकर समन्वयवादी दृष्टि का परिचय देकर समाज में सौहार्द और समता के वातावरण को स्थापित किया। यह सच्चे अर्थों में महान समाजसुधारक, समन्वयकर्ता और लोकनायक थे।

[illegible] :

1 भाषा : इन्होंने लोगों के हृदय में भक्ति का भाव उत्पन्न करने के लिए लोक भाषा अवधी की प्रधानता के साथ ब्रज भाषा का प्रयोग किया। भाषा सौष्ठव की दृष्टि से इनके ग्रन्थ 'रामचरितमानस' और 'विनयपत्रिका' सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ माने जाते हैं। इनके काव्य में संस्कृत के शब्दों के अलावा अरबी फारसी और उर्दू के शब्दों का प्रयोग किया गया है। इनकी भाषा भाव-प्रेषण में समर्थ है। यह प्रसंगानुकूल तथा पात्रानुकूल भी है। यह शुद्ध, व्याकरण सम्मत और समास बहुल भी है। इन्होंने शब्दार्थों के संतुलन पर विशेष बल दिया है।

2 छंद-योजना :- इन्होंने 'रामचरितमानस' महाकाव्य में दोहा, सोरठा, चौपाई, हरिगीतिका, इन्द्रवज्रा, मालिनी और वसन्ततिलका इत्यादि छन्दों का सफल प्रयोग किया है। इनके छन्द भावों के अनुरूप और प्रसंगों के अनुकूल हैं। इनमें संगीत और लय के साथ प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता भी है।

3 अलंकार योजना - इन्होंने अलंकारों का प्रयोग भावोत्कर्ष के लिए किया है। इनके काव्य में अनुप्रास, यमक, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, श्लेष और भ्रान्तिमान इत्यादि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। इनके प्रिय अलंकार रूपक और उपमा हैं। अनुप्रास अलंकार का एक उदाहरण प्रस्तुत है -

[illegible] मुकुट [illegible] श्यामा।
[illegible] अलकामा॥
[illegible]।
[illegible] रमा॥

अलंकार योजना: रूपकों की योजना में तुलसी बेजोड़ माने जाते हैं। इस दृष्टि से 'रामचरितमानस' महाकाव्य एक बेजोड़ ग्रन्थ है। इसका एक उदाहरण प्रस्तुत है -

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। वेद पुरान उदधि घन साधू॥
बरषहिं राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी॥

रस योजना: तुलसीदास ने "रामचरितमानस" महाकाव्य में उत्तरकाण्ड में शांत रस का प्रयोग किया है। कुछ स्थानों पर करुण और शृंगार रसों के दर्शन होते हैं। इसके अलावा इनके सम्पूर्ण काव्य में वत्सल, हास्य, रौद्र और भयानक इत्यादि रसों का प्रयोग मिलता है। शृंगार रस का एक उदाहरण प्रस्तुत है -

राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछांही।
याते सबै सुधि भूलि गई कर टेकि रही पल टारति नाहीं॥

गुण - योजना: भाषा को रस के अनुकूल बनाने के लिए तुलसी ने अपने काव्य में प्रसाद गुण और माधुर्य गुण का विशेषतः प्रयोग किया है। कुछ स्थानों पर ओज गुण के भी दर्शन होते हैं। माधुर्य गुण का एक उदाहरण प्रस्तुत है -

पीपर पात सरिस मन डोला।

वृत्ति योजना (रीति योजना): इन्होंने अपने काव्य में पांचाली, वैदर्भी, गौड़ी, ~~कोमला~~ कोमला, उपनागरिका और परुषा वृत्तियों का प्रयोग किया है।

शब्द शक्ति योजना: अधिकांशतः इनके काव्य में लक्षणा शब्द-शक्ति के दर्शन होते हैं, तो कुछ स्थानों पर अभिधा शब्द शक्ति के दर्शन होते हैं।

कुछ स्थानों पर इन्होंने लोकोक्तियों और मुहावरों का भी प्रयोग किया है। बिम्ब-योजना के द्वारा अपने काव्य को चित्रात्मक और लोकग्राही बनाने का सफल प्रयास किया है। इनका सम्पूर्ण काव्य गेयता के गुण से सम्पन्न है।

रामचरितमानस - व्याख्या

नाथ न मोहि . . . . . . सुजसु बखाई॥

प्रसंग: उपर्युक्त पद्यांश भक्तिकाल की सगुण भक्तिधारा की रामभक्ति शाखा के प्रवर्तक, गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित महाकाव्य "रामचरितमानस" के काण्ड 'उत्तरकाण्ड' से लिया गया है। इस काण्ड में मुख्यतया भक्ति-भावना का विश्लेषण किया गया है। इसमें विभिन्न वार्तालापों द्वारा संतों और असंतों के लक्षणों और भक्ति का गुणगान किया गया है। तुलसी मानते हैं कि व्यक्ति सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर एवं एकनिष्ठ होकर सच्चे हृदय से ईश्वर को प्राप्त करने का प्रयास करे तो उसे सफलता मिलने की संभावना है। उपर्युक्त पद्यांश में भरत भगवान राम से संतों के लक्षण बताने के बारे में कह रहे हैं -

व्याख्या: भरत भगवान श्री राम से कह रहे हैं कि हे स्वामी! मुझे स्वप्न में भी कोई दुःख, संदेह और मोह नहीं है। हे दया और आनन्द की राशि! यह सब केवल आपकी दया का ही प्रभाव है। हे दया के भण्डार! मैं आपसे एक धृष्टता कर रहा हूँ। इसका कारण यह है कि मैं आपका दास हूँ और आप अपने दासों को सुख देने वाले हैं। हे रघुनाथ! मैं आपसे अच्छे पुरुषों के महत्त्व के बारे में पूछना चाहता हूँ क्योंकि इनके बारे में वेदों और पुराणों में भी बहुत कुछ कहा गया है। भरत कहते हैं कि आपने भी अपने मुख से उन अच्छे पुरुषों की प्रशंसा की है और आपको उनसे अत्यधिक

प्रेम भी है। अतः मैं आपसे इन अच्छे पुरुषों के लक्षणों के बारे में जानना चाहता हूँ ताकि मैं भी उनकी पहचान कर सकूँ। मेरा मानना है कि आप दया के सागर हैं और सभी गुणों को जानने में चतुर हैं। आगे भरत भगवान श्री राम से कहते हैं कि आप मुझे संतों और असंतों को अलग-अलग करके उनके बारे मे समझाकर अपनी बात कहें क्योंकि आप शरण मे आने वाले व्यक्ति की रक्षा करने वाले (रक्षक) माने जाते हैं। तब भगवान श्री राम भरत को कहते हैं कि हे भाई! संतों के लक्षण तो असंख्य हैं और वे वेदों और पुराणों में भी प्रसिद्ध हैं। हे भाई भरत! संतों और असंतों के कार्य उसी प्रकार से अलग होते हैं जैसे कुल्हाड़ी और चन्दन के व्यवहार में अन्तर होता है। कुल्हाड़ी चन्दन के वृक्ष को काटती है, जबकि चन्दन का वृक्ष अपनी सुगंध से उस कुल्हाड़ी को सुगंधित कर देता है। इसका कारण यह है कि कुल्हाड़ी में असंत (दुर्जन) और चंदन के वृक्ष में संत (सज्जन) के गुण विद्यमान रहते है।

साहित्यिक

1. इस पद्यावतरण की भाषा साहित्यिक अवधी भाषा है। इसमें दोहा-चौपाई शैली का प्रयोग किया गया है।
2. इस पद्य खण्ड में दोहा और चौपाई छंद प्रयुक्त हैं।
3. इसमें अनुप्रास अलंकार का प्रयोग किया गया है।
4. इस पद्य खण्ड में शांत रस प्रयुक्त है।
5. इसमें माधुर्य गुण का समावेश है।
6. इस पद्यावतरण में लक्षणा शब्द-शक्ति का प्रयोग किया गया है।

—x—

प्रश्न-3 तुलसी के युग-बोध और 'राम राज्य' की परिकल्पना पर अपने विचार प्रकट कीजिए!

उ. युगबोध :- तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में अपने समय की परिस्थितियों का उचित वर्णन किया है। उस समय समाज की जो बुरी अवस्था थी, उसका चित्रण इन्होंने अपने ग्रंथों - दोहावली, रामचरितमानस, कवितावली, और गीतावली में विशेषतः किया है। 'रामचरितमानस' में इन्होंने कलियुग का जो वर्णन किया है वह वस्तुतः तत्कालीन युग-बोध है। उस समय राजव्यवस्था भ्रष्ट थी, राजा धर्म परायण नहीं था और वे प्रजा को बेकार मे ही दण्डित करते थे।

नृप पाप परायन धर्म नहीं।
करि दण्ड विडम्ब प्रजा नित हीं॥

समाज में ऊँच-नीच का भेदभाव व्याप्त था। सभी वर्ण अपने-अपने धर्म का पालन नहीं कर रहे थे। ब्राह्मण वर्ग वेदों का विरोध कर रहा था। लोग बकवास करने वाले लोगों को पण्डित मान रहे थे। ज्ञानियों का महत्व कम हो गया था। मिथ्या आडम्बर करने वाले संत कहलाते थे -

द्विज श्रुति वंचक भूप प्रजासन।
कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥

तत्कालीन समाज में स्त्रियों की दशा दयनीय थी। शासक नारी को केवल भोग-साधना का साधन मान रहे थे। सामान्य लोग नारियों से प्रभावित होकर उनके इर्द-गिर्द घूम रहे थे। सुहागिन स्त्रियाँ आभूषण रहित थी और विधवा स्त्रियाँ नए श्रृंगार कर रही थी। प्रजा धन से रहित थी। इसलिए स्त्रियों के लिए उनके केश ही आभूषण रह गए थे। -

नारि बिबस नर सकल गोसांई।
नाचहिं नट मरकट की नांई॥

पुरुषों में केवल काम-वासना प्रधान रह गई थी। वे अपनी नारियों को घर से निकाल रहे थे और दासियों

द्वार में आश्रय दे रहे थे। कोई भी व्यक्ति अपनी बहन व बेटी पर विचार नहीं कर रहा था।-

कलिकाल बिहाल किए मनुजा।
नहिं मानत कोउ अनुजा तनुजा॥

उस समय लोग निर्धनता से पीड़ित थे। लोगों की आर्थिक स्थिति अत्यधिक सोचनीय थी। लगातार अकाल पड़ रहे थे। अन्न के अभाव में प्रजा भूख से मर रही थी।-

कलि बारहिं बार दुकाल परै।
बिनु अन्न दुःखी सब लोग मरै॥

लोगों में भयंकर बेरोजगारी थी। लोग अपने पेट की आग को शांत करने के लिए कुछ भी करने को तत्पर थे। तुलसी का मानना है कि उस समय किसानों को खेती से कुछ नहीं मिल रहा था। भिखारी को भिक्षा नहीं मिल रही थी। व्यापारी के लिए व्यापार और आजीविका खोजने पर भी नहीं मिल रही थी।-

खेती न किसान को भिखारी को न भीख भलि।
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी॥

लोगों ने वेदों और पुराणों का अध्ययन किया था, वे अपने जीवन में उनकी शिक्षाओं का उपयोग नहीं कर पा रहे थे। लोगों ने वेदों से युक्त मार्ग को त्याग दिया था। अच्छे ग्रन्थ लुप्त हो गए और धार्मिक व्यवस्था पंगु बन गई थी।-

कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रन्थ।

समाज में नैतिकता समाप्त हो गई थी। लोग स्वार्थी बनकर अपने थोड़े-से लाभ के लिए अन्य लोगों को अत्यधिक हानि पहुँचाने के लिए तैयार थे। 'उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे' वाली कहावत समाज में चरितार्थ हो रही थी। कलियुग ने सभी धर्मों को डस लिया था तथा जप-तप और वैराग्य सभी पलायन कर गए थे।

धर्म सबै कलिकाल ग्रसे, जप, जोग बिराग लै जीव पराने।

गुणियों के स्थान पर बुरे कर्मों को करने वाले लोगों को समाज में सम्मान प्राप्त हो रहा था। राजा परीक्षित द्वारा उपकार करने पर भी कलियुग कृतज्ञ न बनकर कृतघ्न बन गया था।-

गाढ़े हितपाल जो परीक्षित भयो कृपाल,
भलो कियो खल को, निकाई सो नसाई है।

उस समय कलियुग के प्रभाव से ऋषि-मुनि, साधु और संत स्वयं को ईश्वर मानकर लोगों से स्वयं की पूजा करवा रहे थे। इसने शिव की नगरी बनारस में ऐसी महामारी फैलाई कि प्रत्येक दिन लोग मृत्यु को प्राप्त करके यमराज के पास जा रहे थे। तुलसी को उस समय ऐसा प्रतीत हुआ कि कलियुग ही धरती का राजा बन गया है और उसकी चपेट में सभी लोग आ रहे हैं-

राजा रंक रागी औ बिरागी भूरिभागी ये,
अभागी जीव परत कलि बाम को।

इस प्रकार तुलसी ने अपने काव्य के द्वारा समसामयिक समाज का सच्चा वर्णन प्रस्तुत करते हुए कहा है कि कलिकाल से बचने के लिए लोगों को राम की शरण में जाना पड़ेगा।

राम-राज्य की परिकल्पना :- इन्होंने सगुण उपासना और अवतारवाद के द्वारा लोगों में धर्म को लोकप्रिय बनाते हुए अपने महाकाव्य "रामचरितमानस" की चित्रकूट-सभा में राम-राज्य की कल्पना को प्रस्तुत किया है। इसके अन्तर्गत उन्होंने एक आदर्श शासन-व्यवस्था को प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं-

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज काहू नाहिं व्यापा॥

इसके अन्तर्गत तुलसी का मानना था कि सब लोग परस्पर

...से जीवन-निर्वाह करते हैं तथा कोई भी व्यक्ति किसी
अन्य व्यक्ति के प्रति शत्रुता का भाव नहीं रखता है। इसमें
सुख का आधार भौतिक समृद्धि न होकर आध्यात्मिक
भावना है। राम मानवता के श्रेष्ठ आदर्श हैं और उनका चरित्र
लोगों के लिए अनुकरणीय है।

तुलसी कहते हैं कि इनके राम राज्य में कोई
भी व्यक्ति अन्य व्यक्ति से शत्रुता नहीं रखेगा क्योंकि वे
मानते हैं कि राम के प्रभाव से असमानता नष्ट हो गयी है।
इसमें सभी लोग वर्णाश्रम धर्म का पालन करेंगे और वेदों से
युक्त मार्ग पर चलकर प्रेम के साथ जीवन व्यतीत करेंगे। उस
समय धर्म अपने चारों चरणों - सत्य, दया, पवित्रता और दान
सहित प्रतिष्ठित होगा। लोगों के बुरे कर्म लुप्त हो जायेंगे। कोई भी
व्यक्ति स्वप्न में भी पाप नहीं करेगा। सभी व्यक्ति सगुण राम
की भक्ति में लीन होकर मुक्ति प्राप्त करके स्वर्ग के अधिकारी
बन जायेंगे -

बरनाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग॥

इसमें कोई भी व्यक्ति कम आयु में मृत्यु प्राप्त
नहीं करेगा। सभी व्यक्ति स्वस्थ रहेंगे। कोई भी व्यक्ति गरीब
मूर्ख और लक्षणों से रहित नहीं रहेगा। लोग घमण्ड से
रहित होकर अपने धर्म का पालन करेंगे। उस राज्य में सभी
नर और नारी हृदय से उदार होंगे। वे परोपकारी बनकर
ब्राह्मणों की सेवा में रत रहेंगे। स्त्रियाँ मन, वचन और कर्म से
पति के हितों का चिन्तन करेंगी -

सब उदार सब पर उपकारी।
बिप्र चरन सेवक नर नारी॥

इनके राज्य में कोई भी व्यक्ति
अपराध नहीं करेगा इसलिए 'दण्ड' की आवश्यकता
नहीं होगी। इस समय लोग केवल अपने मन पर विजय
प्राप्त करने का प्रयास करेंगे, क्योंकि अन्य विजयों पर
जीतने की इच्छा उनके हृदय से समाप्त हो जायगी।
इसमें पूर्णतः सुव्यवस्थित शासन स्थापित होगा। यहां
तक की पशु और पक्षी भी अपनी स्वाभाविक शत्रुता
को भुलाकर आपस में परस्पर प्रेम के भाव को
विकसित करेंगे -

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन।
रहहिं एक संग गज पंचानन॥

इस राज्य में सभी व्यक्ति मर्यादित जीवन व्यतीत करेंगे।
चन्द्रमा अपनी शीतल किरणों से पृथ्वी को भर देगा तो
सूर्य उतनी ही गर्मी प्रदान करेगा जितनी आवश्यकता
होगी। बादल माँगने पर जल प्रदान कर देंगे।

इस राज्य के अन्तर्गत इन्होंने राजा
के कुछ गुणों का उल्लेख किया है। जैसे - वेदों द्वारा
बताए गए नीति के मार्ग पर चलना, धर्म से युक्त
होना, प्रजा का पालन करने वाला होना, उदार हृदय
एवं सज्जन होना, स्वभाव से मजबूत विचारों वाला
होना और दानशील होना इत्यादि। ये सभी गुण
राम में विद्यमान थे। राम को अपनी प्रजा प्राणों से भी
अधिक प्रिय थी तो प्रजा को भी राम प्राणों से
अधिक प्रिय थे। राम का व्यवहार सभी लोगों के प्रति
समान, आदर्श से युक्त और धर्म के अनुकूल था।
ऐसे राम राज्य में असमानता टिक नहीं सकती।

है और प्रजा को भी सभी प्रकार के दुःखों से मुक्ति मिल जाती है।

निष्कर्षतः तुलसीदास ने अपने समय के समाज का वास्तविक चित्रण हमारे सामने प्रस्तुत करके एक आदर्श राज्य 'राम राज्य' की कल्पना प्रस्तुत की है। महात्मा गाँधी के 'राम राज्य' की कल्पना भी तुलसी के 'राम राज्य' पर आधारित है। वास्तव में यह एक ऐसी व्यवस्था है, जिसका मूलाधार लोक-हित व मानववाद है।

×

Scanned with CamScanner

प्रश्न — उत्तरकाण्ड नामकरण का औचित्य बताते हुए उसकी कथा संक्षेप में लिखिये।

उत्तर— उत्तरकाण्ड राम के राज्याभिषेक के बाद की घटनाओं के आधार पर दिया गया है। उत्तर का अर्थ है- अगली, काण्ड का अर्थ है घटना या वृतान्त। वाल्मीकि रामायण में राम के सिंहासनारोहण के पश्चात् उनके जीवन की घटनाओं को उत्तर चरित कहा गया है और उसका वर्णन होने के कारण अन्तिम या सप्तम काण्ड का नाम भी उत्तर काण्ड रखा है। रामचरितमानस में यों तो काव्य का विभाजन सोपानों में है तथापि घटनाओं को दृष्टि में रखकर मानसकर्ता ने रामायण की ही भाँति काण्डों का ही नाम दिया है। केवल छठे काण्ड के नाम में अन्तर किया है। रामायण में छठे काण्ड का नाम युद्ध काण्ड है परंतु मानस में उसे लंका काण्ड नाम दिया है।

वाल्मीकि रामायण के समान काण्ड का नामकरण तो हुआ है पर दोनों की विषय-वस्तु में अन्तर है। रामायण में सीता परित्याग और लवकुश वृतान्त की कथा आई है। भरत मिलाप और राम राज्याभिषेक की कथा उसमें युद्ध में ही आ गई है। परन्तु तुलसीदास ने लंका में घटी घटनाओं का ही लंका काण्ड में वर्णन किया है। राम विभीषण आदि अपने सखाओं को साथ लेकर लक्ष्मण और सीता सहित पुष्पक विमान से अयोध्या को प्रस्थान कर देते हैं। अयोध्या के निकट आने पर भरत के पास राम ने हनुमान - को अपने पहुँचने का समाचार देकर भेजा, क्योंकि भरत ने वचन लिया था कि राम चौदह वर्ष पूर्ण होते ही अयोध्या पहुँचेंगे। यदि एक दिन का भी विलम्ब किया तो मैं जीवित नहीं रहूगा।

राम लंका से चले तो चौदह वर्ष होने को केवल दो एक दिन बाकी थे। इसलिए अवधि पूर्ण होने से पूर्व ही अपने आगमन से भरत को आश्वस्त करने के लिए उन्होंने भरत के पास सूचना भेजना आवश्यक समझा।

उत्तरकाण्ड- चौदह वर्ष की अवधि पूरी होने को एक ही दिन बाकी रहा था। भरत व अयोध्यावासी सब चिन्तित थे। माता और भाई शुभ सगुन देखकर राम के आने की आशा में प्रसन्न हो रहे थे। भरत की दायीं आँख और भुजा बारबार फड़क रही थी। पर वे चिन्तित थे कि प्रभु आये क्यों नहीं। तभी ब्राह्मण के वेष में हनुमान वहाँ पहुँच गये। भरत को राम के आगमन की शुभ सूचना दी तथा आश्वस्त करके कि आप राम को प्राणों से प्रिय है, हनुमान राम के पास लौट गये। उन्हें भरत के गहरे प्रेम की सूचना दी।

इधर माताओं को राम के पहुँचने की सूचना दी और मन्त्रियों तथा नगरवासियों को स्वागत की तैयारियाँ करने को कहा। राम के स्वागत के लिए मधुपर्क सजाकर सब लोग उनके स्वागत के लिए आगे बढे। उधर राम सुग्रीव आदि को अपनी नगरी और पास के स्थान दिखाते आ रहे थे। नगरवासियों को अगवानी के लिए आता देखकर रामचन्द्रजी ने विमान को वहीं उतारने को कहा। विमान से सबके उतरने के बाद उन्होंने पुष्पक विमान को तो पूर्व स्वामी कुबेर के पास जाने को कहा। आगे आकर उन्होंने गुरु वसिष्ठ, वामदेव आदि को प्रणाम किया। तब प्रणाम करते भरत को उठाकर गले लगाया। लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न सब मिले। भरत और शत्रुघ्न ने सीता को प्रणाम किया। नगरवासियों को आता देखकर रामचन्द्र ने अनेक रूप धारण करके सबसे भेंट की, उधर

तीनों माताएँ राम को आया देखकर विकल होकर दौड़ीं। राम-लक्ष्मण ने उन्हें प्रणाम किया। इसके बाद सीता ने सासुओं को प्रणाम करके आशीर्वाद लिया। तदनन्तर राम ने सुग्रीव आदि का सबसे परिचय कराया। मुनि वसिष्ठ ने शुभ दिन देखकर शीघ्र ही सब ब्राह्मणों के साथ परामर्श करके राज्याभिषेक की तैयारी की। राम ने भरत की जटा सुलझाई। तीनों भाइयों को स्नान कराकर स्वयं भी किया। सासों ने सीता को उबटना लगाकर नहलाया। तब राम सीता के साथ सिंहासन पर बैठे।

वैदिक विधि से राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ। वेद स्वयं बन्दी के वेश में स्तुति करने आये। शंकरजी ने भी स्तुति की।

राज्याभिषेक होने के पश्चात् रामचन्द्र जी ने सुग्रीव आदि को सबको ही ठहराया। उन्हें रहते छः महीने बीत गये पर घर जाने का विचार ही न आता था। तब भगवान ने उन्हें वस्त्र-भूषण आदि से सम्मानित करके विदा किया।

अंगद जाना नहीं चाहते थे। रामचन्द्रजी ने उन्हें भी समझा-बुझाकर विदा किया। हनुमान ने सुग्रीव से कुछ दिन और राम की सेवा करने की अनुमति माँगी। राम राज्य में नगर निवासी सब सुखी थे, नगर और राज्य में समृद्धि छा गई थी। एक बार राम भाइयों और हनुमान के साथ बाग में गये जहाँ सनकादि आये। उन्होंने भगवान की स्तुति की और ब्रह्मलोक को चले गये।

कुछ समय के पश्चात् राम के कुश और लव दो पुत्र हुए। अन्य भाइयों के भी दो दो पुत्र हुए। एक बार राम ने नगरवासियों को बुलाया और उन्हें सदाचार का उपदेश दिया। साथ में कहा कि मेरी भक्ति करने वाला कभी भूलकर भी शिवजी से वैर न करे। उनकी भक्ति करने से ही मेरी भक्ति मिलती है। एक दिन मुनि वसिष्ठ राम के पास आये। उन्होंने बताया कि ब्रह्माजी के कहने से पुरोहित का निन्दित कार्य मैंने इसी आशा से स्वीकार किया था कि एक दिन साक्षात् ब्रह्म आप रघुवंश में प्रकट होंगे। कृपया मुझे जन्म-जन्मान्तर में अपने चरणों में प्रेम प्रदान करें।

पार्वती ने इस प्रकार रामकथा सुनकर बड़े आनन्द का अनुभव किया। इसके बाद पूछा कि गरुड का कागभुशुण्डि के साथ समागम कैसे हुआ। कौवे की भगवान में भक्ति कैसे हुई तथा ऐसा भक्त कौवे की नीच योनि में कैसे गया।

शंकरजी ने सुनाया कि सती शरीर में जब दक्ष के यज्ञ में तुमने अपमानवश प्राण त्यागे, तुम्हारे विरह में कैलास के आसपास भ्रमण करते सुमेरु के समीप एक आश्रम देखा जहाँ वह पक्षी देखने में आया। निर्विकार था जिसे देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। कुछ समय मैं वहाँ रहा।

लंका में रावण के साथ युद्ध के दिनों में जब मेघनाद की छोड़ी नागपाश से राम और लक्ष्मण बन्दी हो गये और नारद के कहने से गरुड ने आकर दोनों को मुक्त किया तो राम के स्वरूप के सम्बन्ध में बहुत सन्देह हो गया कि यदि वे स्वयं भगवान है तो वे नागपाश से कैसे बँध गये।

भव बन्धन ते छूटहिं नर जपि जाकर नाम।
खर्व निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम।।

गरुड के सन्देह को जानकर नारद ने उन्हें ब्रह्माजी के पास उसके समाधान के लिए भेजा। ब्रह्माजी ने भी विचार कर उन्हें मेरे पास भेजा। गरुड जिस समय मेरे पास आये, मैं कुबेर के यहाँ जा रहा था। वे मुझे मार्ग में मिले और अपनी समस्या सुनाई। मैंने समझाकर कहा कि ऐसे प्रश्नों का समाधान दीर्घकाल तक सत्संग करने से होता है। मैं इस समय पथ में हूँ। तुम कागभुशुण्डि के पास जाओ। वे तुम्हारे संशय को दूर करेंगे। गरुड कागभुशुण्डि का आश्रम-स्थल जानकर सीधे वहाँ गये। उन्हें आया देखकर कागभुशुण्डि ने उनका बड़ा सत्कार किया और आसन पर बैठाया। इसके पश्चात् आने का कारण पूछा। गरुड ने उस आश्रम में आने से सन्देह के दूर होने की बात कहकर रामकथा सुनाने की प्रार्थना की। कागभुशुण्डि ने भी प्रसन्न होकर राम की बाललीला से लेकर वनवास का वृतान्त और रावण को मारकर अयोध्या लौटने तक की सारी कथा विस्तार से सुनाई। सुनकर गरुड ने कहा कि मुझे भगवान के मनुष्यों के से आचरण के कारण बहुत भारी संदेह हो गया था। पर तुमसे कथा सुनकर वह दूर हो गया है। तब कागभुशुण्डि ने भगवान की माया को अजेय

बताते हुए अपने मन में हुए सन्देह की बात कहकर सुनाई। एक बार जब प्रभु रामावतार लेकर अयोध्या में गये, मैं भी छोटे कौवे का रूप धारण करके वहाँ गया और उनके साथ खेलता पाँच वर्ष वहाँ रहा। वे मुझे पकड़ने की चेष्टा करते थे, मैं उड़कर कुछ हट जाता। वे मुझे पकड़ न पाते थे। यह देखकर मुझे भ्रम हो गया कि ये तो मनुष्य बालक लगते हैं जो मुझे पकड़ नहीं सकते। तब भगवान ने मुझे पकड़ना चाहते हुए बाँह फैलाई। मैं वहाँ से भाग चला, सातों लोकों को भी पार करके जहाँ-जहाँ गया बाँह फैलाये प्रभु को आते देखा, तब मैंने डरकर आँखें मूँद लीं। आँखें खोलीं तो अयोध्या में था। मेरी दशा देखकर राम मुस्कराने लगे, वे जैसे ही हँस रहे थे, सहसा उनके मुख में प्रविष्ट हो गया। भीतर जाकर चराचरात्मक ब्रह्माण्ड उनके उदर में दिखाई दिया जिसमें अनेकों अयोध्या, दशरथ, कौसल्या आदि दिखाई दिये। अनेक सृष्टि और प्रलय, रामावतार वहाँ देखे। देखकर मैं भ्रान्त हो गया। मुझे परेशान देखकर भगवान ने मुस्कराकर मुख खोला और मैं बाहर निकल आया। वे फिर मुझसे बालक्रीड़ा करने लगे। मैं पुनः भ्रम में पड़ गया और उनकी शरण में चला गया। तब उन्होंने अपनी माया समेट ली तथा कृपा करके मुझ पर अपना हाथ फेरा। मुझे उन्होंने वर माँगने को कहा। मैंने भी विचार कर उनसे अटूट भक्ति मांगी तो उन्होंने 'एवमस्तु' कहकर अपनी माया की प्रबलता का वर्णन किया। साथ ही भक्ति की महिमा बतायी और वर दिया कि तुझ पर काल का प्रभाव न होगा। तब वे पुनः अपनी बालक्रीड़ा करने लगे। तभी माता दौड़कर आई और उन्हें भूखा जानकर दूध पिलाने लगी। मैं कुछ समय वहाँ रहकर अपने आश्रम लौट आया।

गरुड़ ने यह सुनकर कागभुशुण्डि की प्रशंसा की और पूछा कि इतने ज्ञानवान और भक्त होने पर भी तुम्हें यह जून कैसे मिली। तब कागभुशुण्डि ने पूर्व कथा सुनाई। एक जन्म में कालियुग में अयोध्या में जन्म लिया जबकि सब लोग पाप लिप्त हो गये थे। सब धर्ममार्ग लुप्त थे, अनेक पाखण्ड प्रचलित थे। उस समय मैं अनेक वर्ष तक अयोध्या में रहा। उसी समय वहाँ भयंकर अकाल पड़ गया जिससे दुखी होकर मैं उज्जैन चला गया। मैं शूद्र था। वहाँ एक शिवभक्त वेदज्ञ ब्राह्मण की मैंने छलपूर्वक सेवा की। वह मुझे भक्ति व ज्ञान-वैराग्य का उपदेश देता था, पर मैं उन पर ध्यान न देता था। मैं शिवभक्त अवश्य था पर विष्णु निन्दक था। वह ब्राह्मण मेरा गुरु था, मेरा आचरण देखकर दुखी होता और मुझे नित्य उपदेश देता था। पर मैं उस पर ध्यान नहीं देता था। एक बार मैं शिवमन्दिर में शिवजी का नाम जप रहा था; उसी समय गुरुजी वहाँ आ गये पर मैंने अभिमानवश उन्हें उठकर प्रणाम नहीं किया। गुरुजी ने तो इस पर कोई ध्यान नहीं दिया किन्तु शंकरजी इस अपराध को नहीं सह सके। उसी समय भयंकर आकाशवाणी हुई और मुझे अजगर बन जाने का शाप दिया।

यह सुन दयालु गुरु ने शंकरजी की स्तुति की और उनसे मुझे क्षमा करने की प्रार्थना की कि इस पर शाप का प्रभाव थोड़े ही समय तक रहे। तब पुनः आकाशवाणी हुई कि मेरा शाप व्यर्थ नहीं जायेगा। इसे हजार बार जन्म अवश्य लेने पड़ेंगे परन्तु जन्म-मरण का दुख नहीं भोगेगा। प्रत्येक जन्म मैं यह ज्ञानी बना रहेगा। पर भविष्य में ब्राह्मण का अपमान मत करना। आकाशवाणी शान्त होने पर गुरुजी ने मुझे समझाया और चले गये। मैं भी शापवश सर्प बना और कुछ समय पश्चात् मृत्यु को प्राप्त हुआ।

मैंने अनेक शरीर धारण किये। सबमें शिवजी की कृपा से मेरा ज्ञान और स्मृति बनी रही, हाँ, गुरु के अपमान का दुख सदा सालता रहा। अन्तिम बार मुझे एक ब्राह्मण के घर जन्म मिला। उसमें भी मैं बच्चों के साथ खेलता हुआ भगवान की लीला करता था। कुछ बड़ा होने पर पिता ने मुझे वेदादि शास्त्र पढ़ाने चाहे पर उनमें मेरा मन नहीं लगता था। केवल राम के चरणों में वृत्ति रमी थी। इसलिए पिता का प्रयत्न सफल न हुआ। कुछ समय बाद उनका देहान्त हो गया। मैं स्वतन्त्र हो गया और प्रभु की भक्ति में लग गया। अनेक मुनियों के आश्रमों में जाता और उनसे राम के गुणगान की बात कहना। उनके मुख से रामचरित सुनता। ऐसा करने से मन से और तो सब कामनाएँ दूर हो गई पर एक इच्छा-प्रबल हो गई कि भगवान राम के चरण-कमलों का मैं दर्शन

Scanned with CamScanner

करूँ। जिन-जिनके पास भी जाता उसी से इसका उपाय पूछता। पर वे सब कहते कि भगवान तो सर्वव्यापक हैं। उनका ध्यान करो। यों प्रत्यक्ष उनके दर्शन कैसे सम्भव हैं। इसी लालसा में घूमता हुआ सुमेरु पर्वत के शिखर पर लोमश महर्षि के आश्रम में गया। आने का कारण पूछने पर मैंने उनसे सगुण ब्रह्म की उपासना का मार्ग पूछा। उन्होंने कुछ देर भगवान राम का चरित्र सुनाया और फिर निर्गुण का उपदेश देने लगे। मैं उन्हें बारबार सुगणोपासना का मार्ग बताने के लिए रोकता। बार-बार ऐसा करने से उन्हें क्रोध आ गया और मुझे कौवा बन जाने का शाप दे दिया। उनके शाप से मैं शीघ्र ही कौवे के शरीर में आ गया। उनको प्रणाम करके मैं उड़ चला, यह एक प्रकार से मेरी परीक्षा ही थी। मैं जब मन, कर्म और वचन से रामभक्ति में लगा रहा, मुनि पर क्रोध नहीं किया तो भगवान ने कृपा करके लोमश ऋषि की बुद्धि में पुनः परिवर्तन किया। उन्हें अपने शाप पर पश्चात्ताप हुआ। कृपा करके उन्होंने मुझे बुलाया। समझा-बुझाकर मुझे राम-मंत्र की दीक्षी दी। साथ में राम के बाल रूप का ध्यान करने का उपदेश दिया जो मुझे बहुत भाया। कुछ समय तक उन्होंने मुझे अपने पास रखा और शंकरजी का कहा रामचरितमानस मुझे सुनाया, और कहा कि यह कथा रामभक्ति से दूर रहने वालों को कभी न सुनाना वे इसके अधिकारी नहीं हैं। तदनन्तर मेरे शरीर पर हाथ फेरकर कभी भी रामभक्ति से विमुख न होने का आशीर्वाद दिया। प्रभु की कृपा से सभी इच्छाएँ पूर्ण होने का आशीर्वाद दिया। आकाशवाणी ने भी इनकी बात का समर्थन किया। तब मैं प्रसन्न मन से उन्हें प्रणाम करके इस आश्रम में चला आया। यहाँ रहते मुझे सत्ताईस कल्प बीत गये हैं। जब-जब प्रभु राम अयोध्या में अवतार लेते हैं मैं वहाँ जाकर उनकी बालक्रीड़ा देखा करता हूँ। तब कागभुशुण्डि ने गरुड़ को ज्ञान-वैराग्य का उपदेश देते हुए भक्तिमार्ग की श्रेष्ठता सिद्ध की, गरुड़ के सात प्रश्नों के उत्तर दिये। तब कृतार्थ होकर गरुड़ ने कागभुशुण्डि के प्रति कृतज्ञता प्रकट की और उन्हें प्रणाम किया तथा वैकुण्ठ को चले गये।

Scanned with CamScanner

प्रश्न —उत्तर काण्ड में वर्णित कागभुशुण्डि व गरुड़ की प्रासंगिकता पर एक निबन्ध लिखिये।

उत्तर— रामचरितमानस का मुख्य विषय रामचरित है। अन्य कथाएँ उससे किसी न किसी रूप में सम्बद्ध होकर काव्य में स्थान पा सकती है। पुन: मुख्य कथा की समाप्ति से पर्व तो इस प्रकार की सम्बद्ध कथाएँ अपनी प्रासंगिता रखती है पर जब मुख्य कथा ही समाप्त हो गई हो, तब लगभग एक ऐसी कथा जिसका मुख्य कथानक से कोई योग न हो, एक महाकाव्य में परिशिष्ट की भाँति ही प्रतीत होती है। रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में आई गरुड-कागभुशुण्डि की यही स्थिति प्रतीत होती है। कारण यह है कि श्रीराम के अपने भाइयों व हनुमान के साथ अमराइयों में जाने तथा नारद के वहाँ जाकर श्रीराम की स्तुति करके चल देने के साथ ही रामचरित का अवसान हो जाता है। स्वयं आदि वक्ता शिवजी पार्वती से कहते है—

गिरिजा सुनहु बिसद यह कथा। मैं तब कही मोरि मति जथा।।

और इसके पश्चात् वे पूछते है कि तुम अब और क्या सुनना चाहती हो। इसका तात्पर्य यह है कि जो तुमने प्रश्न किये थे उनका उत्तर मिल गया है, राम की कथा समाप्त हो चुकी है। अब कहने को कुछ भी बाकी नही है। इसके साथ ही महाकाव्य का अवसान हो जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त जो लोग कथावस्तु के संगठन की दृष्टि से रामराज्य की स्थापना तक निर्वहण संधि देखते हैं उनके हिसाब से भी यह कथा काव्य की मुख्य सीमा में नही आती। क्योंकि निर्वहण संधि फ़लागम नामक कार्यावस्या पर निर्भर होती है। राम का कार्य रावण तथा उसके अत्याचारों के अन्त के पश्चात् सुव्यवस्थित और सुखशान्तिपूर्ण राज्य की स्थापना थी जो पूरा हो चुका है। अपना लक्ष्य पूरा करके वे निवृत्त भी हो चुके हैं। अत: पुन: अन्य कथा कहना एक प्रकार से समाप्त पुनारात्त नामक दोष ही उपस्थित करेगा। पुन: यह कथा मुख्य काव्य से एक अतिशी की लकड़ी से जुड़ी है जो कि उमा का प्रश्न है गरुड का कागभुशुण्डि से संवाद कहाँ ओर कैसे हुआ। पर यह प्रश्न कवि की काव्य को आगे बढाने की इच्छा का ही तो अंग है। वह प्रश्न न योजित करता तो काव्य का विराम वहीं हो जाता।

आपातत: यह आपत्ति उपर्युक्त तर्कों के आधार पर ठीक ही प्रतीत होती है। जहाँ तक काव्य के कथावस्तु के गठन का प्रश्न है, उसकी दृष्टि से तो यह अप्रासंगिक ही है। परन्तु जैसा इसका नामकरण है, जैसी दीर्घ परम्परा इसकी कवि ने प्रस्तुत करनी चाही है, उस दृष्टि से यह कथा अलग से देनी आवश्यक हो गयी। उसके तीन कारण हैं—

1- कवि ने आरम्भ में चार संवाद होने की प्रतिज्ञा की। उन में तीन को तो स्थान मिल गया। वे श्रृंखलाबद्ध रूप में मूल कथा से जुड़ गये। जैसे स्वयं कवि ने अपने निकटतम प्रश्नकर्ता भरद्वाज से याज्ञवल्क्य मुनि के समक्ष प्रश्न रखवाया और याज्ञवल्क्य ने प्रथम सती के मुख से और बाद में पार्वती के मुख से वही प्रश्न करवाया। अब यदि शिवजी भी वही प्रश्न गरुड़ के मुख से कागभुशुण्डि के समक्ष रखवाते और कागभुशुण्डि कथा आरम्भ करते तो निश्चय ही यह कथा मूल कथा में जुड़ जाती। यों भी कागभुशुण्डि गरुड़ को पूरी कथा सुनाते हैं और मानस के रचयिता को सूची के रूप में उन सभी घटनाओं को दोहराना भी पड़ता है जैसा उसने इससे पूर्व कभी नहीं किया। पर ऐसा करने में एक कठिनाई तो यह होती कि तब कथा के आदि प्रवर्तक शंकर के स्थान पर कागभुशुण्डि सिद्ध होते जो कि कवि को अभीष्ट भी न था और लोमश महर्षि का यह कथन कि इस रामचरितमानस की रचना शम्भु ने की और उनकी कृपा से मुझे प्राप्त हुआ था, संगत न होता।

अन्य कठिनाई यह थी कि कागभुशुण्डि की कथा उस प्रसंग में फिट न बैठती। क्योंकि उस कथा के दो भाग हैं— 1-रामचरित 2- कागमुशुण्डि की आत्मकथा जो कि अपने आप में एक पुराण है। यह रामचरित वाला भाग कथञ्चित् सम्बद्ध हो जाता पर उनकी आत्मकथा उसके बीच स्थान न पा सकती थी। यदि डालते तो सारा काव्य अव्यवस्थित हो जाता। इस असमंजस का अनुभव कवि को अवश्य हुआ होगा। इसीलिए बीच में स्थान न पाने पर भी उसे संकेतित करना ही पर्याप्त समझा—

सुनु सुभ कथा भवानि रामचरित मानस विमल।
कहा भुसुंडि बखानि सुना बिहग नायक गरुड़।।

वस्तुत: कथा जिस प्रकार पहले से सुसम्बद्ध चली आ रही है, उसको देखते हुए यह सोरठा प्रक्षिप्त-सा प्रतीत होता है।

2-कवि ने गरुड और कागभुशुण्डि की चर्चा यहीं नहीं की है। अन्य काण्डों में भी एक-दो स्थानों पर गरुड को सम्बोधित करवाया है। पर व्यवस्थित ढंग से गरुड को श्रोता के व कागभुशुण्डि को वक्ता के आसन पर अभिषिक्त किये बिना ये सम्बोधन अजीब से लगते है कि यह बीच में गरुड कहाँ से आ गया। इसलिए कवि ने इस कथा को यहाँ स्वतन्त्र रूप में स्थान दिया।

3- कवि का लक्ष्य भक्ति और ज्ञान में समन्वय के साथ-साथ ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की महत्ता की प्रतिष्ठा करना भी था। इसके अतिरिक्त अपने समय में दिन पर दिन बढ़ते काल के प्रभाव के कारण गिरी हुई सामाजिक स्थिति का चित्रण करना कवि को अभीष्ट था पर अन्यत्र उसके लिए कहीं उपयुक्त अवसर नहीं था। इस परिशिष्ट में कागभुशुण्डि के किसी कल्प के जीवन के वृत्तान्त के मिस उसका वर्णन कर दिया जो कि खटकता भी नहीं है। कवि ने अपने दार्शनिक विचारों का प्रकाशन भी कागभुशुण्डि के शब्दों में सरलता से कर दिया।

इस कथा के द्वारा एक प्रयोजन और सिद्ध हुआ। प्राचीन परम्परा अगस्त्य एवं लोमश को भी रामयणकर्ताओं में गिनती है। अगस्त्य महर्षि की चर्चा तो शिवजी ने स्वयं बालकाण्ड में की ही। पर सारी रामायण या रामचरितमानस में लोमश नाम कहीं नहीं आया है। जब कि महाभारत में वे युधिष्ठिर को रामकथा सुनाते दिखाई देते है। इस कमी को कागभुशुण्डि की कथा से पूरा किया गया है। लोभश उन्हें राममन्त्र की दीक्षा देते हैं। यद्यपि वे भी रामकथा का ज्ञान शंकरजी से ही हुआ मानते है और उनको रामचरितमानस का रचयिता बताते है तथापि रामकथा के प्रवक्ताओं में उनकी गणना तो हो ही गयी है।

इससे एक इष्ट सिद्धि और होती है। यद्यपि रामचरितमानस में कवि ने रामचरितमानस की रचना का आरम्भ करने की बात कही है पर वह वस्तुत: उसकी कथा आरंभ करने की चर्चा कर रहा है। वह स्पष्ट उसके शिवकृत होने का उल्लेख करता है—

रामचरित मानस मुनिभावन। विरचेउ संभु सुहावन पावन।।
रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा।।
ताते रामचरित मानस बर। घरेउ न नम हियँ हेरि हरषि हर।।

लोमश ऋषि भी इसकी पुष्टि करते हैं—

रामचरित सर गुप्त सुहावा। संभु प्रसाद तात मैं पावा।।
तोहि निज भगत रामकर जानी। तातें मैं सब कहेउँ बखानी।।

परन्तु यहाँ एक विरोध दृष्टिगोचर होता है। काकभुशुण्डि की कथा के अनुसार एवं स्वयं लोमश के शब्दों से तो सिद्ध होता है कि कागभुशुण्डि को यह रामचरितमानस लोभश से प्राप्त हुआ था, सीधे शंकरजी से नहीं। परन्तु बालकाण्ड में कवि कहता है कि स्वयं शिवजी से कागभुशुण्डि को इसका ज्ञान हुआ—

संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा कर उमहिं सुनावा।।
सोइ सिव कागभुसंडहि दीन्हा। रामभगत अधिकारी चीन्हा।।

यहाँ दोनों वचनों का परस्पर विरोध स्पष्ट है। यह बात और है कि हम खींच-तान से यह समाधान कर लें कि लोमश के द्वारा शिवजी ने कागभुशुण्डि को ज्ञान दिया।

इस उपर्युक्त विवेचन के द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि यह कथा मूल कथा के बीच में स्थान न पा सकने के कारण परिशिष्टि के रूप में बाद में जोड़ी गई है। बालकाण्ड में संकेत आने व परम्परा के कारण ही इसकी प्रासंगिकता बनती है। अन्यथा यह शिथिल ग्रन्थि से जोड़ी गई है।

प्रश्न उत्तरकाण्ड में प्रतिबिम्बित दार्शनिक तत्वों पर प्रकाश डालिये।

उत्तर- गोस्वामी तुलसीदास के समय में चार दार्शनिक विचारधाराएँ प्रमुख रूप से प्रचलित

Scanned with CamScanner

थी— 1 अद्वैतवाद, 2 विशिष्टाद्वैतवाद, 3 द्वैताद्वैतवाद, 4 शुद्धाद्वैतवाद ।

अद्वैतवाद— यह शंकर द्वारा प्रवर्तित सिद्धान्त है । इसके अनुसार यह जो दृश्यमान और सूक्ष्म जगत है, वह वास्तविक सत्य नहीं है व्यावहारिक सत्य ही है । इसका सिद्धान्त है— ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः । इसके अनुसार जीव और ब्रह्म में वास्तविक भेद नहीं है । जब जीव अविद्या से ग्रस्त और माया से लिप्त हो जाता है तो इस देहबन्धन में बँधकर संसार के प्रपंचों में लिप्त हो जाता है । तत्वज्ञान होने पर उसे अहं ब्रह्मास्मि या 'सोऽहम्' का अनुभव हो जाता है और वह संसार से मुक्त हो जाता है ।

विशिष्टाद्वैतवाद— इसे विशिष्ट अद्वैतवाद भी कहते है । इसके अनुसार जीव ब्रह्म से अभिन्न न होकर उसका अंश है । पहले मत से ब्रह्म सर्वथा निर्गुण, निर्लेप, अजन्मा और निराकार है । उसका सृष्टि के निर्माण में कोई हाथ नहीं है । माया की सहायता से ईश्वर नाम की शक्ति ही संसार की सृष्टि में व्याप्त होती है । परन्तु विशिष्टाद्वैत के अनुसार ईश्वर या ब्रह्म निर्गुण होने पर भी भक्तों पर दया करके सगुण बन जाता है । वह आकार धारण कर लेता है और सृष्टि के निर्माण रक्षा और संहार में प्रवृत्त होता है । जीव अविद्या और माया से लिप्त होकर संसार के राग-द्वेष में लिप्त हो जाता है । इस संसार को वास्तविक और सत्य समझ लेता है । उसका यह ज्ञान सीप को चाँदी और रस्सी को साँप समझने के समान है । इस अज्ञान के कारण ही वह जीव बार-बार जन्म लेता और मरता है । यदि वह भक्तिपूर्वक ईश्वर की आराधना करे तो उनकी कृपा से मुक्ति प्राप्त कर लेता है । इस मत के प्रवर्तक आचार्य रामानुज थे ।

द्वैताद्वैत— इसके अनुसार जीव, जगत् और ब्रह्म या ईश्वर पृथक् है । जगत् जड है, जीव और ईश्वर चेतन है । जीव भगवद्भक्ति से उनकी कृपा पाकर सालोक्य मुक्ति पा सकता है ।

शुद्धाद्वैत— इसके अनुसार वास्तविक तत्व ईश्वर या श्रीकृष्ण है । वे सच्चिदानन्द हैं । जब सत्वगुण का तिरोभाव और रजोगुण व तमोगुण का आविर्भाव होता है, तभी जीव और जगत् की कल्पना होती है । भक्ति के द्वारा भगवान का अनुग्रह पाकर जीव मुक्ति पा लेता है ।

ये बाद के तीनों वाद सगुणोपासना वाले है और भक्तिमार्ग पर बल देते हैं ।

रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में गोस्वामी तुलसीदास ने कागभुशुण्डि के मुख से दार्शनिक विवेचन कराकर भक्ति पर बल दिया है ।

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने दार्शनिक विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं—

यह जीवात्मा परमात्मा की ही भाँति नित्य, अनश्वर, चैतन्यमय, विशुद्ध ज्ञान स्वरूप और आनन्द का भण्डार है । जैसे ईश्वर सत्, चित् और आनन्द रूप है, ऐसे ही जीव भी । अन्तर इतना है क वह स्वयं ईश्वररूप न होकर उसका अंश ही है ।

ईश्वर अंश जीव अविनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ।।

ईश्वर माया के वश में नहीं होता बल्कि अपनी माया से वह सभी जीवों को कठपुतली की भाँति नचाया करता है । जीव उस माया और अविद्या से लिप्त होकर इस संसार के विषय-विकारों में फँसकर बार-बार जन्म लेता और मरता है । उसे काम-क्रोध , लोभ, मोह, मद और मत्सर वशीभूत कर लेते है । वह तोते और बंदर की भाँति स्वयं माया के जाल में बँध जाता है । जड़ और चेतन में गाँठ पड जाती है । अवास्तविक होने पर भी माया और अज्ञान के कारण उस गाँठ के खुलने में कठिनाई होती है । वेदों व पुराणों में बताये गये जप-तप यज्ञ आदि उपायों से भी गाँठ नहीं खुलती । उस जीव पर ज्ञान का ऐसा पर्दा पड जाता है कि वह गाँठ खोलने से भी नहीं खुलती । हाँ, यदि प्रभु की कृपा हो जाय तो जीव उस बंधन से उबर जाता है । ईश्वर ही ऐसा संयोग मिलाता है-

अस संजोग ईस जब करई । तबहुँ कदाचित् सो निरुअरई ।।

यदि भगवत्कृपा से उसके मन में सात्तित्वक श्रद्धा उत्पन्न हो जाय, वेदों और शास्त्रों में कहे गये जप, तप, व्रत, यम-नियम आदि धार्मिक आचरणों में प्रवृत्ति हो जाय, तो हृदय में आस्तिकता की भावना जाग जाती है । फलस्वरूप विषयों की ओर से मन हटने लगता है, निष्ठा उत्पन्न हो जाती

है जिसके फलस्वरूप निष्पाप हो जाता है । इस शुद्धीकरण से निष्काम भावना उत्पन्न होती है, संतोष, क्षमा, धैर्य, शम, मुदिता, मैत्री आदि भाव जागते हैं । तब तत्व चिन्तन से दम और सत्य का सहारा लेने से मन में वैराग्य का भाव उदित होता है । तब योगाग्नि प्रदीप्त करके उसमें भले-बुरे कर्म (फल) भस्म करके ज्ञान उत्पन्न होता है और मन में सारी ममता का मैल जल जाता है । तब बुद्धि में शुद्ध विज्ञान का प्रकाश होता है । तब चित्त में सुख दुख में न मित्र शत्रु में समत्व की बुद्धि उत्पन्न होती है । ध्यान के द्वारा जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति की तीनों अवस्थाओं को भेदकर तुरीयावस्था में पहुँच जाता है । वह विज्ञानमयी अचल दीप की स्थिति होती है जिसमें रागादि मल जल जाते हैं ।

एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यानमय ।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब ।।

इस प्रकार तत्वज्ञान होने पर आत्मा पर लिपटे अविद्या आदि दोष सब दूर हो जाते हैं । वह अपने स्वरूप को पहचान लेता है । तब वह 'सोऽहम् अस्मि' में वही सर्वव्यापक परम पुरुष इस प्रकार की अखण्ड भावना जाग जाती है । इस प्रकार जब आत्मा अपने आनन्दघन स्वरूप का अनुभव कर लेता है, तब संसार बन्धन के कारण सारे संशय और मिथ्या ज्ञान दूर हो जाते हैं ।

उस जीवातमा को प्रपंच में लपेटने वाली अविद्या का काम क्रोध, मद, मोह आदि बहुत बड़ा परिवार है जो कि आत्मा के अपने स्वरूप का अनुभव कर लेने पर नष्ट हो जाता है । उसके साथ ही अविद्या का प्रसार हट जाता है और जड चेतन वाली गाँठ खुल जाती है । उस गाँठ के खुल जाने पर यह जीवकृतकृत्य हो जाता है, उसके लिए तब संसार में कोई कर्म करने को नहीं रह जाता और पहले के किये कर्म फल नष्ट हो जाते हैं ।

तब सोइ बुद्धि पाइ उँजियारा । उर गृह बैठि ग्रंथि निरुआरा ।।
छोरन ग्रंथि पाव जौ सोई । तब यह जीव कृतारथ होई ।।

इसका समर्थन कठोपनिषद के इस वचन से होता है—

भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य, कर्माणि दृष्टे तस्मिन् परावरे ।।

परन्तु यह मन की गाँठ खुलना सरल नहीं है । जिस समय यह स्थिति आती है, उस समय माया इस में बाधा डालती है । वह अणिमा महिमा आदि सिद्धियों तथा नव निधियों को बुद्धि को लुभाने के लिए भेजती है । साधक के समक्ष जब ये सिद्धियां आती है तो बहुधा वह भटक जाता है । आत्मज्ञान के वजाय इन सिद्धियों और निधियों के लोभ में पड जाता है । यदि बुद्धि स्थिर और अडिग हो और उन सिद्धियों के बहकावे में न आये तो देवता इन्द्रियों के छिद्रों में बैठे हुए विषय वासना का मार्ग खोल देते हैं । यह विषय-वासनाओं की आँधी इतनी प्रबल होती है कि अन्तःकरण को प्रभावित करके जलते हुए ज्ञानदीप को सहसा बुझा देती है । इस प्रकार वह संशय की गाँठ ज्यों की त्यों बनी रह जाती है तथा जैसे-तैसे प्राप्त आत्मप्रकाश भी लुप्त हो जाता है । इस प्रकार ज्ञान का मार्ग बहुत कठिन है । उस पर चलना तलवार की धार पर चलना ही है । ये इन्द्रिय विषय-परायण हैं । उन्हें ज्ञान के बजाय भोग प्रिय है । विषयों के प्रपंच मे फँसी बुद्धि ज्ञान की ओर प्रवृत्त नहीं हो पाती । तब जीव भगवान की माया के वश में होकर विषयों में डूबा हुआ जन्म-मरण के फेर में पडा अनेक प्रकार के क्लेश भोगता रहता है । इस प्रकार सिद्धि के लिए ज्ञान मार्ग बहुत टेढा है । पहले तो बहुत गूढ होने से आत्मज्ञान का उपदेश देना ही दुष्कर है । यदि कोई उत्तम सद्गुरु मिल भी गया और उसने उपदेश दिया भी तो समझना अति कठिन है । यदि संयोगवश कभी वह ज्ञान प्राप्त हो जाय तो भी उसके मार्ग में बहुत रुकावटें आती रहती हैं जो सिद्धि की ओर नहीं बढने देतीं—

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन विवेक ।
होइ घुनाक्षर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक ।।

इस प्रकार ज्ञानमार्ग के साधक के समक्ष बहुत कठिनाइयाँ हैं । इसके विपरीत भक्ति का मार्ग सरल है । ज्ञानमार्गी के मोक्ष प्राप्त करने में बहुत कठिनाइयाँ हैं । परन्तु भक्तिमार्गी को वह अनायास

Scanned with CamScanner

प्राप्त हो जाता है । मोक्ष का सुख विना भक्ति के स्थायी नहीं रह सकता । क्योंकि भगवद्भक्त को भगवान के चरणों के ध्यान और परिचर्या में जो सुख प्राप्त होता है, उसमें मग्न होकर लौकिक विषयों की ओर उसकी वृत्ति ही नहीं जाती । उधर मोक्ष सुख पा चुका व्यक्ति कभी भी माया और अविद्या के फन्दे में पड़ सकता है । हाँ, यदि मुक्ति होने पर भी वह भक्ति में लीन रहे तो उसे माया प्रभावित नहीं कर सकती । इसी कारण बहुधा भक्त जन मोक्ष की तुलना में भक्ति को ही प्राथमिकता देते हैं । सच्ची भक्ति हृदय में रहने पर काम क्रोध आदि मल स्वयं नष्ट हो जाते हैं । सांसारिक विषय मोह माया के कारण होता है । माया स्त्री है, उस पर ज्ञान मोहित हो सकता है पर भक्ति स्वयं स्त्री है । स्त्री स्त्री पर आसक्त नहीं होती । इसलिए वह माया के वश में नहीं आती । इधर भक्ति अपने आप अविद्या का नाश कर देती है । जैसे तृप्ति के लिए किये गये भोजन को जठराग्नि स्वयं पचा देती हैं ।

भक्ति के द्वारा भगवान का अनुग्रह प्राप्त होता है । पर वह भक्ति सेव्य और सेवक भाव से की जाय तभी संसारतरण में सहायक होती है । इसलिए भगवान राम के चरण कमलों का निरन्तर सेवन ही एकमात्र उपाय है । भगवान अपने अनुग्रह से चेतन को जड़ और जड़ को क्षण में चेतन बना देते हैं ।

यह रामभक्ति अत्यन्त चमचमाता चिन्तामणि रत्न है । वह जिसकी हृदय-गुफा में विद्यमान हो, वहाँ सदा प्रकाश रहता है । अविद्या का अन्धकार और माया का मल वहाँ फटक नहीं सकता । काममद आदि वहाँ जा ही नहीं सकते । विष भी अमृत बन जाता है, शत्रु मित्र हो जाते हैं । उस मणि को हृदय में रखने से आन्तरिक व्याधियाँ नहीं सतातीं ।

वह मुक्ति का सुगम उपाय भक्ति विना भगवान की कृपा प्राप्त नहीं होती । सत्संग और वेद-पुराण आदि का सार सुनने से ही उसका उदय होता है । राम से राम के भक्त अधिक बड़े हैं जिनके संग से वह भक्ति-भावना प्राप्त होती है—

ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान सन्त सुर आहिं ।
कथा सुधर मधि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं ।।

अर्थात् जिस प्रकार देवताओं ने मन्दर पर्वत के द्वारा सागर को मथकर मधुर सुधा को निकाला था, इसी प्रकार विद्वान भक्तगण वेदशास्त्र का निचोड़ भगवत्कथा को निकालते हैं जिसमें भक्ति का माधुर्य भरा रहता है । जिस प्रकार एक वीर पुरुष तलवार और ढाल का आश्रय लेकर अपने शत्रुओं को मार डालता है, इसी प्रकार एक भक्त भी वैराग्य के द्वारा कामादि को नष्ट कर रागादि पर विजय प्राप्त करता है ।

विरतिचर्म असि ग्यान मद लोभ मोह मद मारि ।
जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस विचारि ।।

सारांश में तुलसीदास विशिष्टाद्वैतवाद के अनुयायी हैं जिसके अनुसार जीव स्वयं ब्रह्म न होकर उसके गुणों से युक्त उसका अंश है । जिस प्रकार गंगाजल अपने प्रवाह में रहता हुआ तो विकृत नहीं होता पर उससे पृथक् होकर भूमि या पात्र के संसर्ग से गन्ध आदि विकारों से युक्त हो जाता है, इसी प्रकार जीव ब्रह्म से दूर रहकर अविद्या, माया आदि विकारों से लिप्त हो जाता है । जैसे जलते दीपक पर कोई आवरण डाल देने से उसका प्रकाश रुक जाता है, ऐसे ही माया व अविद्या के दोष से उसका सहज बोध ढक जाता है । ब्रह्म का अंश होने के कारण वह अंग है और ब्रह्म अंगी । इसलिए उसे अंगी को प्राप्त करने के लिए भक्ति की आवश्यकता है । जैसे समुद्र की बूँद को समुद्र में मिलने की अपेक्षा होती है, समुद्र को नहीं । अभेद होने पर भी जीव ही ब्रह्म का अंश कहलाता है, ब्रह्म नहीं । उनका ब्रह्म निर्गुण होकर भी सगुण हो जाता है, निराकार रहकर भी साकार बन जाता है । घट-घट में व्यापक होने पर भी उससे पृथक है । अनीह और अप्रकाश होने पर भी सृष्टि के निर्माण, रक्षा और संहार में रुचि लेता है । वही सभी प्राणियों का नियन्ता है ।

तुलसीदास के अनुसार यह मनुष्य शरीर सब शरीरों में श्रेष्ठ है । यह सिद्धियों का साधन है । इस शरीर को पाकर भी हरिभक्ति न कर विषयों में अभिरति दुर्भाग्य ही है । दारिद्रय के समान कोई

Scanned with CamScanner

दु:ख नहीं । सत्पुरुषों से भेंट के बराबर कोई सुख नहीं है। क्योंकि वे सदा सद्बुद्धि देकर सबके कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं । शिव और गुरु की निन्दा करने वाला अन्य जन्म में मेंढक बनता है । ब्राह्मणों की निन्दा करने वाला कौवा । देवताओं व वेदों की निन्दा करने वाले रौरव नरक के भागी होते हैं । सत्पुरुषों की निन्दा करके उल्लू बनता है । सभी की निन्दा करने वाले चमगादड़ बनते हैं । मोह, काम, और क्रोध ये तीनों मानस रोग हैं । तीनों का सम्मिलन सन्निपात सदृश है । ममता, राग, ईर्ष्या या मत्सर, मद, दंभ, कपट, अहंकार तृष्णा आदि भी रोग के सदृश हैं ।

ये सब रामकृपा से ही दूर होते हैं, सद्गुरु का उपदेश, श्रद्धा, वैराग्य, संयम से उनकी निवृत्ति होती है ।

वस्तुत: तुलसीदास का दर्शन भक्ति दर्शन है । जिसमें अन्य दार्शनिक तत्वों की चरम परिणति रामभक्ति में होती है ।

Scanned with CamScanner

प्रश्न —गोस्वामी तुलसीदास द्वारा प्रस्तुत राम का व्यक्तित्व संक्षेप से वर्णित कीजिये।

उत्तर — गोस्वामीजी एक भक्त कवि थे। उन्होंने अपने महाकाव्य का नायक ऐसे पात्र को चुना जो न केवल अपनी चारित्रिक महिमा से मानवता के समक्ष एक अद्‌भुत आदर्श प्रस्तुत करता है, प्रत्युत अपने आधिदैविक गुणों से कोटि मानवों की श्रद्धा और भक्ति का पात्र भी बन गया है। तुलसी से पूर्व राम सम्बन्धी विपुल साहित्य लिखा जा चुका था। उसमें राम कुछ दिव्यता रखते हुए भी महामानव के रूप में ही अपना प्रभाव छोड़ते हैं। वे विष्णु के अवतार होने पर भी अपना अवतारी रूप कम उजागर करते हैं।

वस्तुतः उनके सामने राम के व्यक्तित्व को लेकर साहित्य-रचना के मूल में कोई समस्या न थी। राम के चरित्र की गरिमा ने ही उन्हें लिखने को प्रेरित किया था। परन्तु तुलसी के समक्ष कई प्रश्न थे। उनमें सबसे पहला था कि विदेशी या विधर्मी यवनों की दासता से सत्वहीन और राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परेशानियों से समस्त एवं निराश भारतीय समाज को आशा का सन्देश देना था।

दूसरी बात यह है कि समाज चारित्रिक दृष्टि से पतित एवं भ्रष्ट हो गया था। उसके समक्ष आदर्श चरित्र रखकर उसका चारित्रिक उत्थान भी करना था। तीसरी बात यह है कि धर्म के क्षेत्र में पारिस्परिक कलह और सम्प्रदायों में वैमनस्य फैलया। शैव और वैष्णव एक दूसरे के निन्दक बन गये थे। तुलसी इस अनावश्यक कलह को मिटाना चाहते थे।

चौथा प्रश्न यह था कि उस समय राम के स्वरूप के सम्बन्ध में भ्रम फैला हुआ था। कोई उन्हें निर्गुण और निराकार ही मानते थे। दशरथ पुत्र राम और उपास्य राम में भेद स्वीकारते थे। इसलिए तुलसी ने राम को ही अपना चरित्र-नायक बनाया और उनका वह स्वरूप प्रस्तुत किया जो इन चारों प्रश्नों का समाधान कर सके।

उनके राम एक ओर अयोध्या के राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र हैं जिनका जन्म श्रृंगी ऋषि द्वारा किये गये पुत्रेष्टि यज्ञ के प्रभाव से हुआ था। दूसरी ओर वे मानव रूप में परात्पर ब्रह्म हैं जो कि भक्तों के शाप को सत्य करने, उनको दिये अपने वरदान को सत्य करने तथा पृथ्वी पर बढ़े पाप के भार को हल्का करने एवं देवताओं, ब्राह्मणों व सत्पुरुषों के कष्ट दूर करने और निशाचरों के संहार के लिए अवतार लेते हैं।

राम आचार्य शुक्ल के शब्दों में शक्ति, शील और सौन्दर्य के निधान हैं। उनकी शक्ति का परिचय बाल्य काल से ही मिलने लगता है। विश्वामित्र उनकी शक्ति को पहचानते हैं, इसीलिए वे लक्ष्मण के साथ उन्हें राजा दशरथ से मारीच को बिना फल वाले बाण से ही बहुत दूर फेंक देते और सुबाहु के वध से उनकी अपूर्व सामरिक शक्ति, शस्त्रास्म निपुणता तथा उत्साह सब के समक्ष प्रकट हो जाते हैं। बाल्य से ही पर-पीड़ाहरण उनका व्रत हो जाता है। वे किसी प्रकार के यात्रा आदि के कष्ट की चिन्ता किये बिना विश्वामित्र के साथ चल देते हैं। अन्यथा ऐसे लाड़-प्यार में पले राजकुमार पैदल ही इतना मार्ग तय करना कैसे पसन्द करते।

ज्ञानवान् और अवतारी पुरुष होने पर भी वे सभी मानवोचित व्यवहार यथावत् करते हैं।

Scanned with CamScanner

अन्य बालकों की भाँति उचित आयु आने पर उनका भी यथाविधि यज्ञोपवीत होता है और उस काल के पाठ्यक्रम के अनुसार वेदादि शास्त्रों का अध्ययन करते हैं—

जाकी सहज स्वास श्रुति चारी । सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी ।।

वे अत्यन्त विनम्र हैं, अपने ज्ञान को प्रकट नहीं करते । अज्ञ की भाँति मुनि द्वारा सुनाई गई पुराणादि की कथा चाव से सुनते हैं । मार्ग में पड़ी शिला को निर्जन आश्रय में देखकर हृदय में कौतूहल होता है, विश्वामित्र से उसके सम्बन्ध में पूछा । मुनि ने कहा —

गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर ।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर ।।

राम सहज ही अपने पदस्पर्श से उसका उद्धार करते हैं । यह उनके दिव्यत्व का प्रकाशन है । पर ऐसे चमत्कारी कार्य करके भी वे कुछ अहंभाव प्रकट नहीं करते । उनके कर्म से पूर्व असाधारण सौन्दर्य प्रथम दृष्टि में ही सम्पर्क में आने वाले को मोह लेता है । वह विरोधी को भी एक बार प्रभावित किये बिना नहीं रहता । शिव धनुर्भंग से कुपित परशुराम भी जब उन्हें देखते हैं तो देखते ही रह जाते हैं —

रामहिं चितइ रहे थकि लोचन । रूप अपार मार मदमोचन ।।

अपने सौन्दर्य की मोहिनी सम्पूर्ण नगर पर डाल देते हैं । स्वाभाविक सरलता के कारण जनकपुरी के बालकों के निमन्त्रण पर उनके साथ जा-जाकर उनके द्वारा दिखाई वस्तुओं को देखते हैं । वे बालक इनके शरीर का इसी बहाने स्पर्श पाकर स्वयं को धन्य समझते हैं ।

पुष्प वाटिका में अपने सहज सौन्दर्य का जादू राजमहल की किशोरियों के हृदय पर छोड़ देते हैं । सीता सदृश असाधारण सुन्दरी राजकन्या पहली दृष्टि में ही अपना हृदय खो बैठती हैं—

थके नयन रघुपति छबि देखे । पलकन्हि हूँ परिहरी निमेषे ।।
अधिक सनेह देह भै भोरी । सरद ससिहुँ जनु चितब चकोरी ।।

यह नहीं कि सीता के रूप को देखकर उन पर प्रभाव न पड़ा हो । वे भी सहसा आकृष्ट हो जाते हैं पर मनचले युवकों की भाँति नहीं ।

अपने मन की पवित्रता पर उन्हें विश्वास है । इसलिए सीता के प्रति आकर्षण का कारण दैवी संयोग मानते हैं कि वह उन दोनों को मिलाना चाहता है ।

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा । सहज पुनीत मोर मन छोभा ।
सो सबु कारन जान बिधाता । फरकहिं सुखद अंग सुनु भ्राता ।।

यह राम की निश्छलता का भी प्रमाण है कि वे अपने मन के विकार को छिपाते नहीं हैं । अपने छोटे भाई से और बाद में मुनि विश्वामित्र से भी कह देते हैं । गम्भीर प्रकृति होने के कारण सामर्थ्य होने पर भी स्वयं धनुष उठाने या तोड़ने नहीं जाते । हाँ, जनक के -

'वीर विहीन मही मैं जानी'

इस निराशापूर्ण वचन से उनके मन में भी मनस्विता के कारण क्षोभ अवश्य हुआ होगा । पर वे प्रकट नहीं करते । लक्ष्मण द्वारा क्रोध में कहे गये वचन से उन्हें प्रसन्नता ही होती है पर बड़ों का निरादर न हो, इसलिए इशारों से लक्ष्मण को आगे कुछ कहने से रोकते हैं ।

बड़ा भाई होने के कारण अपने से छोटे की बात रखना, उसकी रक्षा करना वे कर्तव्य समझते हैं । लक्ष्मण के मन में नगरभ्रमण की इच्छा जानकर स्वयं विश्वामित्र से इसके लिए अनुमति माँगते हैं । परशुराम के समक्ष भी लक्ष्मण का पक्ष लेते हैं ।

विनयशील होने पर भी मनास्विता कूट-कूट कर भरी है । इसलिए परशुराम को अपना तेज और स्वाभिमान भी दिखाने से नहीं चूकते ।

जौं हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ ।
तौ अस को जग सुभटु जेहि भय बस नावहिं माथ ।।
देव दनुज भूपति भट नाना । समबल अधिक होइ बलवाना ।।
जौं रन हमहिं पचारै कोऊ । लरहिं सुखेन काल किन होऊ ।।

वे अनुशासित हैं, पिता को आया जानकर उनसे मिलने यों ही नहीं दौड़ पड़ते । विश्वामित्र के साथ ही उनके समीप जाते हैं । उनके मन में कृतज्ञता, स्नेह, वात्सल्य, उदारता आदि गुण कूट-कूट कर भरे हैं । लंका से लौटने पर विभीषण, सुग्रीव आदि द्वारा युद्ध में की गई सहायता का पूरा उल्लेख करते हैं । पिता के वचन की रक्षा के लिए सहर्ष वनवास स्वीकार करना, भरत के अनुरोध पर राज्य का लोभ न करना, ऋषियों पर निशाचरों के अत्याचार सुनकर निशिचर हीन करौं मही भिजउठाइ प्रन कीन्ह' से आर्तत्राण की भावना, शरणागत वत्सलता, नीतिज्ञता आदि गुणों का परिचय उनके चरित से मिलता है । बाद में अकेले ही चौदह हजार राक्षसों का वध और लंका में राक्षसों के विरुद्ध दिखाये गये शौर्य से उनके असाधारण शौर्य का परिचय मिलता है । यह तो राम के महामानवत्व का पक्ष है । पीड़ित व्यक्ति किसी शूर, निर्भीक और आर्तत्राणव्रती से ही अपनी रक्षा की आशा कर सकता है । इसलिए राम की ओर दुखी और संत्रस्त समाज की रक्षा की आशा से देखना कोई अनुचित नहीं ।

आधिदैविक रूप—किन्तु ऐतिहासिक व्यक्ति पश्चाद्वर्ती समाज की रक्षा के लिए कैसे आगे आ सकता है । पुनः एक विदेशी और विधर्मी सत्ता से रक्षा का प्रश्न है, व्यक्ति से नहीं । जो समस्या दण्डक वन के ऋषियों की थी, वही तुलसी के समसामयिक समाज की थी —

जब जब होइ धरम कै हानी । बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ।।

रावण का शासन प्रतीक रूप में ही देखें तो यवन शासन का ही वर्णन किया गया प्रतीत होता है, जिससे रक्षा के लिए प्रणतपाल भगवता को स्मरण करने की आवश्यकता पड़ी । मानस के राम का जब तक यह पक्ष सामने न रखा जाय, तब तक उनका व्यक्तित्व पूर्ण रूप से चित्रित नहीं होता ।

राम परात्पर ब्रह्म है । वे निर्गुण होने पर भी भक्तों की रक्षा और धर्म की स्थापना के लिए सगुण भी हो जाते हैं । दोनों में वास्तविक अन्तर नहीं होता । जैसे पानी, बर्फ और ओले एक पानी के ही भिन्न-भिन्न रूप है ।

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे । जलु हिम उपल बिलग नहि जैसे ।।

ये वेदप्रसिद्ध पुरुष है, प्रकाशक, सर्वत्रव्यापक होने पर भी विभिन्न रूपों में प्रकट, सबके प्रभु रघुकुल भूषण हैं ।

उनके रोम-रोम में कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड रमे है । अपनी माया से सारे विश्व का निर्माण करते हैं । उनके स्वरूप का यथार्थ ज्ञान कठिन है । और उनको जान लेने के बाद ही सब कुछ जाना हुआ ज्ञात होता है ।

तस्मिन् ज्ञाते हि सर्वज्ञातं भवति ।

वे ही सबकी अन्तरात्मा में स्थित होकर सब को प्रवृत करते है —

विषय करन सुर जीव समेता । सकल एकते एक समेता ।।
सबकर परम प्रकाशक जोई । राम अनादि अवधपति सोई ।।

वे ही वे अन्तरात्मा हैं जिनके सम्बन्ध में कहा है— योह्यन्तः सन्नयर्यमयति । तथा

तमेव भान्तमनुभान्ति सर्वे, तस्य भाषा सर्वमिदं विभाति ।

वे सूत्रधार हैं और सारी आत्माएँ दासयोषित्— कठपुतलियां है जिन्हें वे मनइच्छा से नचाते हैं ।

जिस प्रकार सूर्य की किरणों से बालू में लहराता पानी दिखाई देता है जो वस्तुतः किरणों का ही प्रकाश होता है, तथा सीप में चाँदी का भ्रम होता है, इसी प्रकार राम में इस जगत् का भ्रम होता है । जब राम के सत्य स्वरूप का ज्ञान हो जाता है तब यह भ्रम दूर हो जाता है । वे राम वे ही ब्रह्म है जिन का आदि और अन्त नहीं मिलता । सारे विश्व को अपने इशारे पर नचाने वाली माया भी उनके इशारे पर नाचा करती है —

जो माया सब जगहिं नचावा । जासु चरित लखि काहु न पावा ।।
सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा । नाच नटी इव सहित समाजा ।।

यह सारा ब्रह्माण्ड उनके शरीर के अन्दर भी है और बाहर भी । अनेक शिव, विष्णु और

Scanned with CamScanner

ब्रह्माण्ड उनके बीच हैं।

लोक लोक प्रति भिन्न विधाता। भिन्न विष्णु सिव मनु दिसित्रता।।

यह राम का विराट् रूप है जिसमें अनेकों ब्रह्माण्ड समाये हुए हैं। एक पलक झपकते वे अनेकों सृष्टियाँ रच सकते हैं और उनका संहार कर सकते हैं।

सामान्य रूप से राम को विष्णु का अवतार कहा है परन्तु वे विष्णु से भी परे हैं, क्योंकि यदि वे विष्णु हों तो उनके अन्दर अनेकों विष्णु कैसे आ सकते हैं। वस्तुतः ब्रह्म का सगुण रूप अकल्पित है। उसमें अनेक विरोधामास हैं। यह सब माया का प्रभाव मानकर राम को निरुपाधि, अखण्ड, नीह, सर्वव्यापक और सर्व समर्थ ब्रह्म के रूप में ही जानना चाहिए। उसी स्वरूप को तुलसी ने रामचरितमानस में प्रस्तुत किया है।

Scanned with CamScanner